शिव ग्रन्थमाला: ग्रन्थांक - २१

वाञ्छाकल्पलता

सम्पादक :
आचार्य पं० शिवदत्त मिश्र शास्त्री

प्रकाशक :-
ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली - वाराणसी - २२१००१

'शिव' ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–२१

वाञ्छा-कल्पलता

'जयन्ती'-भाषाटीका-सहिता

०

देवरिया-मण्डलान्तर्गत-'मझौली राज्य'-(सम्प्रति वाराणसी) निवासी-
पण्डितश्रीकान्तमिश्रशर्म्मणां पौत्रेण पण्डितश्रीसन्तशरण-
मिश्रशर्म्मणामात्मजेन

व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि-
आचार्यपण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिणा
राष्ट्रभाषाहिन्दीटीकया विविधस्थल-
टिप्पण्या च संभूष्य

सम्पादिता

०

ज्योषि, हस्तरेखा, तंत्र सम्बन्धी सभी
पुस्तकों के लिये
सम्पर्क करें : फोन: 3278835
रंजन पब्लिकेशन्स
६, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

संशोधित संस्करण] [१९८२ ई०

प्रकाशक :
ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली, वाराणसी-१
फोन ६४२०

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
द्वितीय संस्करण : १९८२
मूल्य Rs. 20/ रु

मुद्रक :
विष्णु प्रेस,
कतुवापुरा,
वाराणसी-१

सम्पादकीय

प्रस्तुत पुस्तक अबतक अन्यत्र कहीं से भी प्रकाशित नहीं थी। इसलिए वांछा-स्नेही साधकजन अद्यावधि परम्परया इसको लिख-लिख करके ही अपनी मनःकामना की पूर्ति करते थे। किन्तु इससे साधक वर्ग को बड़ी असुविधा प्रतीत होती थी। एतदर्थ इन असुविधाओं को ध्यान में रखकर, एवं अनेक वांछा-स्नेही पाठकों के विशेष आग्रह पर ही, मैंने कुलपरम्परागत हस्त लिखित प्रतियों के आधार पर शुद्ध पाठ करके 'जयन्ती' नामक राष्ट्रभाषा हिन्दी टीका, पाठान्तर एवं स्थान-स्थान पर विशेष टिप्पणी आदि से सुसज्जित कर यह पुस्तक तैयार किया है।

'यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।'

के अनुसार इस पुस्तक के पाठ तथा अनुष्ठान से जिसकी जो भी वांछा = इच्छा होती है, वह अवश्यमेव कल्पलता = कल्पवृक्ष के समान पूर्ण होती है, इसमें सन्देह नहीं।

ग्रन्थ के अन्त में 'आथर्वण-सौभाग्यकाण्डे···'ऐसा लिखा गया है। अर्थात् अथर्ववेद के सौभाग्यकाण्ड से यह उद्धृत किया गया है। इसमें चार पर्याय हैं। प्रत्येक पर्याय में श्री विद्या के बीजमन्त्रों के साथ अथर्ववेद में आये हुए मन्त्र ऋग्वेद में भी उपलब्ध हैं, जो कि वांछा-कल्पलता में सम्पुटित हैं।

यह समस्त मनःकामना सिद्धि के लिए तो प्रत्यक्ष कल्पलता है ही, और भी जिस-किसी अनुष्ठान, साधना या पाठ-पूजा में इसका प्रतिदिन आठ पाठ स्वयं सुना जाय अथवा दूसरों को भी सुनाया जाय तो शीघ्र ही अभीष्ट फल-प्राप्ति होती है, यह इसकी प्रधान विशेषता है।

'जपेत् षोडश-साहस्रं षट्सहस्रमथाऽपि वा' के अनुसार इसका सोलह हजार या छह हजार पाठ (जप) करने का विधान है।

सम्पूर्ण वांछाकल्पलता के मन्त्रों का वर्तमान वैवस्वतमनु (श्राद्धदेव) ने समाधि में दर्शन प्राप्त किया था। उन मन्त्रों में, विभिन्न मन्त्रों के द्रष्टा

आनन्द भैरव, गणक, अङ्गिरा, कश्यप, वसिष्ठ, विश्वामित्र और संवर्तन ऋषि हैं। गणेश, शिव, बाला, संवनन और पंचदशी इसके देवता हैं। इसके दो भेद बताये गये हैं—१. प्रतिकूल को अनुकूल करना और २. अनुकूल को वशीकरण करना। इसकी फलश्रुति में कहा गया है कि—

'निशान्ते तु प्रतिदिनं चतुर्वृत्तिः पठेद् यदि।
सर्वैश्वर्यं लभेत् सर्वं वेदपाठफलं लभेत्' ॥

(वा० क०, श्लो० २, पृ० ३२)

अर्थात् जो साधक प्रतिदिन प्रातःकाल में इसका चार आवृत्ति पाठ करता है, उसे विश्व का समस्त ऐश्वर्य प्राप्त होता है। और साथ ही उसे वेद-पारायण का भी फल मिलता।

और भी—

'आवर्तनत्रये लक्ष्मीः पञ्चावृत्तौ जगद्-वशम्।
दशावृत्तौ शिवादीनां देवानां शक्तिमान् भवेत् ॥
शतावृत्तौ सार्वभौमो दरिद्रोऽपि भवेन्नरः।
नार्थवादोऽथर्वणि स्याद् वसिष्ठवचनं यथा ॥'

(वा० क०, श्लो० ३-४, पृ० ३३)

अर्थात् तीन आवृत्ति (बार) पाठ करने से लक्ष्मी, पाँच आवृत्ति के पाठ से सारा ससार साधक के वश में हो जाता है। दश आवृत्ति से शिवादि देवता की तरह वह विशेष शक्तिशाली हो जाता है। यदि दरिद्र मनुष्य इसका १०० सौ पाठ पूरा कर ले, तो वह सार्वभौम राजा हो जाता है।

अथर्ववेदोक्त ये यन्त्र हैं, जो सर्वथा सत्यार्थ के प्रकाशक हैं। इसमें ऋषियों के वचन अर्थवाद (मिथ्या प्रशंसा) के नहीं हैं। अर्थात् वेद मन्त्र और श्लोकों के बीज मन्त्र ये कथमपि प्रशंसा के पात्र होते ही नहीं यह निर्विवाद है।

'वाञ्छाकल्पलतायास्तु न होमो न च तर्पणम्।
स्मरणादेव विद्याया यदिच्छति तदाप्नुयात् ॥'

सबसे बड़ी विशेषता तो इसमें यह है कि इसमें न होम और न तर्पण की आवश्यकता है। केवल श्रद्धा-भक्ति युक्त हो इसके पाठमात्र से ही मनुष्य जो चाहता है वह सब-कुछ प्राप्त कर लेता है, इसमें दो मत नहीं।

ग्रन्थान्त में परिशिष्ट है, जिसमें भूशुद्धि, भूतशुद्धि, तुरीय सन्ध्याविधि नाम पारायणविधि, शान्ति-पञ्चक, श्रीसूक्त, सिद्धि-लक्ष्मी स्तोत्र तथा लक्ष्मी स्तवराज दिये गये हैं।

इससे वांछा-प्रेमी पाठकों का कुछ भी उपकार हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। साथ ही काशी के सुप्रतिष्ठित एवं ख्यातिप्राप्त तान्त्रिक तथा दैवज्ञरत्न पं० श्री कन्हैयालाल दीक्षित के विद्वान् पुत्र पं० श्री वामनजी दीक्षित, मन्त्रशास्त्री का मैं आभारी हूँ, क्योंकि इनसे सम्पादन में मुझे विशेष सुझाव तथा आवश्यक पुस्तकें सुविधानुसार देखने को मिली हैं।

सर्वांगसुन्दर सचित्र छपाई-सफाई एवं शुद्ध मुद्रण के लिए 'ठाकुरप्रसाद पुस्तक भण्डार कचौड़ीगली, वाराणसी' के अध्यक्ष श्री द्वारिका प्रसाद जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। और मैं उनके समस्त परिवार की अहर्निश अभ्युन्नति की शुभ-कामना करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक का प्राक्कथन मेरे सम्माननीय बन्धुवर आचार्य पं० श्री श्यामसुन्दर जी शुक्ल (अध्यापक-वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) ने लिखा है। इसके लिए उनका मैं हृदय से आभार मानता हूँ।

यद्यपि संशोधन-सम्पादन एवं हिन्दी व्याख्या आदि समस्त कार्य मैं बड़ी सावधानी के साथ किया हूँ, फिर भी मानवदोष से सम्भव त्रुटियों के लिए क्षमार्थी हूँ।

अन्त में, मैं जिन जगज्जननी माता जयन्ती की असीम अनुकम्पा से यह कार्य सर्वथा पूर्ण कर सका हूँ, उन्हीं के पुनीत चरण-कमलों में सादर समर्पित कर अपने को कृतकृत्य मानता हूँ।

गुरु पूर्णिमा
सी.के. ५।२६ ए०, भिखारीदास लेन,
वाराणसी-१

—शिवदत्तमिश्र शास्त्री

प्राक्कथन

संसार के प्रत्येक प्राणी सुख-समृद्धि की कामना करते हैं। प्रत्येक मनुष्य पुत्र, धन, विद्या और बल की कामना करते हुए संसार के सर्वविध आनन्द चाहते हैं, किन्तु वे सन्मार्ग के ज्ञान के अभाव से वंचित हो जाते हैं। सम्पूर्ण विश्व के मानवों में सर्व-प्रथम मनुष्य की उत्पत्ति भारतवर्ष के ब्रह्मावर्त में ही हुई, उनमें भी ब्रह्मर्षियों की प्रथम उत्पत्ति हुई। यहीं से पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और उत्तर दिशा में वे फैले। ब्रह्मा ने अपने मानस पुत्रों को योगविद्या का उपदेश किया, उसके बल से सम्प्रज्ञात समाधि के अव्यवहित पूर्व और समाधि-भङ्ग के अव्यवहित उत्तर दिव्य प्रकाश में वेद और तन्त्र के बीज मन्त्रों का उन लोगों ने मानस साक्षात्कार किया। वैदिक और तान्त्रिक बीज मन्त्र उस समय व्यक्त हो अर्थाकार से प्रत्यक्ष होते हुए वाम दिशा से दक्षिण दिशा को प्रकाशित होते जाते हैं, उन मन्त्रों को समाधि भङ्ग होने पर सग्रह कर लिया गया, अतएव उक्त मन्त्र अथवा सूक्त का वही ऋषि हो गया, जिसके सहयोग से मन्त्राभिव्यक्ति होती है, वह उसका देवता होता है। अथवा चतुर्थ अनाहत चक्र के भेदन से उसके ३६ मण्डलों की अभिव्यक्ति हो जाती है, किन्तु उसमें २६ मण्डल अस्पष्ट रहते हैं और १० मण्डल स्पष्ट व्यक्त हो जाते हैं. उनसे जो ध्वनि निकलती है, उसे नाद कहते हैं, उसे भी सम्प्रज्ञात समाधिलब्ध योगीजन ही श्रवण कर सकते हैं और जिस नाद में जिस ध्वनि से जिन मन्त्रों का श्रवण हुआ, पठन में वही उसकी शैली हुई। प्रातिशाख्यों में स्वरशैली का विस्तृत विवेचन है, जिनमें विभिन्न ऋषियों का मत भी है।

शास्त्रों में पाँच प्रकार की पुस्तकों का उल्लेख मिलता है—ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद, बिन्दु और अक्षर। वे निम्नोक्त प्रकार से हैं—

ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद और बिन्दु ये चार पुस्तकें चिरस्थायी होती हैं, किन्तु १. अक्षरमयी पुस्तकें, जो अक्षरों में लिखी जाती हैं, उनका कल्प तक जाते-जाते विनाश हो जाता है। २. ब्रह्माण्ड के अधीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और

महेश की प्रेरणा से जो पवित्र पिण्डों में भावनात्मक प्रेरणा उत्पन्न होती है, उससे प्रकाशित होने वाली पुस्तकें 'ब्रह्माण्ड पुस्तक' कहलाती है। ३. वेद के भावार्थ को स्मरण कर नित्य ऋषियों की कृपा से शक्ति-प्राप्त-महापुरुषों के द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ का नाम 'स्मृति' है, उसे 'विन्दु पुस्तक' कहते हैं। ४. नित्य ऋषियों की प्रेरणा से ज्ञान को प्रकाशित करने वाली पुस्तकें समय-समय पर आविर्भूत होती हैं, उसे 'पिण्ड पुस्तक' कहते हैं। पिण्ड पुस्तक दो प्रकार की होती हैं—'दैवी पिण्डपुस्तक' और 'आसुरी पिण्ड पुस्तक'। ५. कल्प-कल्पान्तर में प्रकाशित होनेवाली ज्ञानराशि जिन मन्त्रों द्वारा प्रकाशित होती है, वे मन्त्र ऋषियों को समाधि के अव्यवहित पूर्व अथवा समाधि भङ्ग के अव्यवहितोत्तर अथवा नाद से ज्यों-के-त्यों श्रवण-गोचर होते हैं, उसे 'नादमयी पुस्तक' कहते हैं। (शतपथ ब्राह्मण ११।५।८)

'प्रजापत्या श्रुतिर्नित्या' (वायु पुराण ६१।७५)

'यत्र ऋषयः प्रथमजाः' (अथर्व वेद ७।१४)

वेद नादमयी पुस्तक है। वायु पुराण के अनुसार श्रुतियाँ नित्य हैं, वे सृष्टि के आरम्भ से ही ऋषियों को यथानुपूर्व श्रवणगोचर होती हैं। उपर्युक्त ब्रह्माण्ड और नाद पुस्तकें त्रिमूर्त्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से सम्बन्ध रखती हैं। प्रथम में भावना रूप से प्रेरणा होती है और द्वितीय में सारे शब्दार्थ यथार्थ रूप में ऋषियों के अन्तःकरण में शब्द (वेद मन्त्र वा बीज मन्त्र) ऋषियों के अन्तःकरण में अर्थाकार से व्यक्त हो जाते हैं।

बिन्दु और पिण्ड पुस्तकों का सम्बन्ध नित्य ऋषियों से है। ब्रह्माण्ड, नाद और बिन्दु पुस्तकें अलौकिक होती हैं। पञ्चम अक्षरमयी पुस्तकें लौकिक और अलौकिक दोनों भाव को धारण करती हैं।

भाषा

हरिवंश के अनुसार जिस शक्ति के द्वारा अर्थ (वस्तुओं) का प्रकाश (ज्ञान) हो उसे 'भाषा' कहते हैं, वह तीन प्रकार की होती है :—१. समाधि भाषा, २. परकीय भाषा और ३. लौकिक भाषा। मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी का

स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र को भेदन कर सप्तम सहस्रार चक्र में त्रिकोण के मध्य बिन्दु से प्रत्यक्ष होकर चन्द्राह्लाद ज्योत्स्ना के दर्शन करते हुए योगीजन 'तुम, हम' के ज्ञान से परे हो जाते हैं, उसका नाम समाधि है, इससे सर्वदा आनन्द की ही अनुभूति होती है। श्रुतियों ने कहा है—१. 'आनन्दं ब्रह्म यं हि लब्ध्वा आनन्दी भवति।' उस काल के ज्ञान को व्यक्त करने वाली भाषा का नाम 'समाधि भाषा' है। २. समाधि भाषा से देव भाषा में जिस अर्थ की अभिव्यक्ति की जाती है वह 'परकीय भाषा' है। ३. समाधि भाषा और देव भाषा के अर्थों की जनभाषा में जो अभिव्यक्ति होती है, उसे 'लौकिक भाषा' कहते हैं।

वेद और तन्त्र नादमयी पुस्तक और समाधि भाषा है, जो नित्य हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'वाञ्छाकल्पलता' में दोनों का एकत्र प्रतिपादन है। वैदिक मन्त्र तान्त्रिक बीज मन्त्रों से सम्पुटित हैं। इनमें से एक-एक स्वतन्त्र रूप से कामना को पूर्ण करते हैं। यदि दोनों एकत्र हों तो कहना ही क्या? श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से कहा है—

'वैदिकस्तान्त्रिकश्चेति इति मे द्विविधो मखः'।

अर्थात् वैदिक और तान्त्रिक दोनों प्रकार का मेरा ही यज्ञ है। अथवा वैदिक और तान्त्रिक यज्ञों के द्वारा मुझे प्राप्त किया जा सकता है। अथर्व वेद के ही 'वाञ्छाकल्पलता' के मन्त्र हैं, इस प्रकार पुस्तक में लिखा है, किन्तु अथर्व वेद की बीस अथवा नव शाखाओं में सम्प्रति वैश्वामित्र शौनक कृत 'शौनक संहिता' और आत्रेय पिप्पलादकृत 'पैप्पलाद संहिता'-द्वय में वाञ्छाकल्पलता के मन्त्र दृष्टिगोचर नहीं होते, अन्य शाखाएँ अनुपलब्ध हैं। सम्भव है, 'आथर्वणरहस्य' में हों, किन्तु 'सौभाग्यकाण्ड' के मन्त्र के उल्लेख से विदित होता है कि अथर्व वेद की किसी शाखा के ये मन्त्र हैं।

ऋग्वेद की ५ शाखाओं में शाकल्य ऋषि संगृहीत 'शाकल्य संहिता' सम्प्रति उपलब्ध है, जिसमें अधोलिखित ऋषियों से मानस-प्रत्यक्षी कृत मन्त्र का दर्शन होता है, वे ऋषिगण विभिन्न काल में उत्पन्न हुए, उनके समाधिस्थ मानस प्रत्यक्षीकृत मन्त्रों का संग्रह वेद तथा तन्त्र बीज हैं।

ऋषि	मन्त्र	वेद	मं० सूक्तः ऋचा
१. गोतम राहूगण	आनी भद्राः०	ऋक्	१ । ८६ । १
२. ,,	देवानां भद्रा०	,,	१ । ८६ । २
३. ,,	तान् पूर्वया निविदा	,,	१ । ८१ । ३
४. ,,	तन्नो वातो मयो भुवातु	,,	१ । ८६ । ४
५. ,,	तमीशानं जगतः	,,	१ । ८६ । ५
६. ,,	स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा	,,	१ । ८६ ६ ।
७. ,,	भद्रं कर्णेभिः	,,	१ । ८६ । ८
८. सुकक्ष आङ्गिरस, यदद्यकच्च		,,	८ । ४३ । ४
६. गाथिनी विश्वामित्र,	तत्सवितुर्वरेण्यम्	,,	३ । ६२ । १०
१०. मैत्रवारुणिर्वसिष्ठ	त्र्यम्बकं यजामहे	,,	७ । ५६ । १२
११. कश्यप मारीच	जातवेदसे सुनवाम	,,	१ । ६६ । १
१२. संवनन आङ्गिरस	समानो मन्त्रः समिति	,,	१० । १६१ । ३
१३. .. ,,	समानी व आकूतिः	,,	१० । १६१ । ४
१४ ,, ,,	संसमिद्युवसे	,,	१० । १६१ । १
१५. गृत्समद	गणानां त्वा गणपतिः	,,	२ । ३ । १
१६. ऐन्द्रो बिमद	भद्रं नो अपि वातय	,,	१० । २० । १
१७. संवनन आङ्गिरस	संगच्छध्वम्	,,	१० । १६१ । २
१८. विहथ आङ्गिरस	अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्	,,	१० । १२८ । ६
१६. प्रचेता आङ्गिरस	अजैष्माद्यासनाम च	,,	१० । १६४ । ५
२०. हिरण्यस्तूप आङ्गिरस	ये ते पन्थाः सवितः	,,	१ । ३५ । ११

उपर्युक्त मन्त्रों के अतिरिक्त विभिन्न मन्त्र उपनिषदों के हैं । तत्-तत् मन्त्रों की ही श्रीविद्या (तन्त्र) के मन्त्रों से सम्पुटित किया गया है । वेदमन्त्र के पूर्व-'ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः' मन्त्र लिखा गया है, जो श्री विद्या का सार बीज है । वेद मन्त्र के अन्त में—'ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वर-वरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सः क्लीं ऐं' लिखा हुआ मिलता है ।

एकाग्र मनोवृत्ति से निरन्तर प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व, ४ पर्याय पाठ करने से अभिकांछित फल की प्राप्ति चिरस्थायी होती है। जैसा कि फलश्रुति में कहा है—

'निशान्ते तु प्रतिदिनं चतुर्वृत्तिः पठेत् यदि।
सर्वैश्वर्यं लभेन्नूनं वेदपाठफलं लभेत् ॥ १ ॥
आवर्त्तनत्रये लक्ष्मीः पञ्चावृत्तौ जगद्वशम्।
दशावृत्तौ शिवादीनां देवानां शक्तिमान् भवेत् ॥ २ ॥
शतावृत्तौ सार्वभौमो दरिद्रोऽपि भवेन्नरः।
नार्थवादोऽथर्वणि स्याद् वसिष्ठवचनं यथा ॥ ३ ॥
वाञ्छाकल्पलतायास्तु न होमो न च तर्पणम्।
स्मरणादेव विद्याया यदिच्छति तदाप्नुयात्' ॥ ४ ॥

उपर्युक्त २० मन्त्रों के १३ मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। वेद मन्त्रों के नित्य होते हुए उनका प्रत्यक्ष दर्शन, सिद्ध योगीजनों को ही होता है, साधारण जनता को नहीं, वे किसी वस्तु को लेने के लिए उसके स्थान पर नहीं जाते, किन्तु जिस वस्तु की इच्छा करते हैं वह स्वयं उनके पास आ जाती है अथवा स्वयं बन जाती है—'वाचमर्थोऽनुधावति'

उपर्युक्त सभी मन्त्रों के ऋषिगण वर्तमान श्वेत वाराह कल्प के सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम त्रेतायुग से प्रारम्भ कर २४ वें त्रेतायुग तक के हैं, अर्थात् विक्रम सवत् पूर्व ११ करोड़ ७५ लाख ६१ सहस्र ४४ वर्ष से प्रारम्भ कर २ करोड़ २४ लाख ७७ सहस्र ४४ वर्ष के ऋषिगण हैं।

मन्त्र-संख्या	ऋषि-परिचय	मन्वन्तर	युग
१–७	अङ्गिरा आत्मज रहूगण पुत्र गौतम	वैवस्वत	२४ वें त्रेतायुग में
८	,, शिष्य सुकक्ष	,,	३ रे द्वापरयुग में
९	गाथी (गाधी) पुत्र विश्वामित्र	,,	१९ वें त्रेतायुग में
१०	वसिष्ठ शिष्य मैत्रावारुणि	,,	२४ वें त्रेतायुग में
११	मरीचिपुत्र कश्यप	,,	प्रथम त्रेतायुग में
१२–१४–१७	अङ्गिरा पुत्र संवनन	,,	द्वितीय त्रेतायुग में
१५	अत्रिकुल सुहोत्रात्मज गत्समद	,,	तृतीय द्वापरयुग में

१६ पुरन्दर इन्द्रपुत्र विमद	पञ्चम कृत (सत्य) युग में
१८ अङ्गिरा विद्यावंश शिष्य विहथ	२४ वें कृतयुग में
१९ ,, शिष्य प्रचेता (कुवेर)	३ रे त्रेतायुग में
२० अङ्गिरा पुत्र हिरण्यस्तूप—वै० म०	२ रे कृतयुग में

बीस मन्त्रों के ११ ऋषिगण उपर्युक्त श्वेत वाराह कल्प के सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के द्वितीय कृत युग से प्रारम्भ कर २४ वें त्रेतायुग में उत्पन्न हुए और जिन मन्त्रों का अर्थाकार में परिणत स्वरूप को मानस प्रत्यक्ष किये, उनके अनुष्ठान से कल्पनाएँ पूर्ण होती हैं। धनकामना, पुत्रकामना, विद्यादि कामना से कृत अनुष्ठान तत्-तत् अर्थों को प्राप्त कराता है। यह वचन स्वयं मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने बताया है और भारतीय जनता उसके अनुष्ठान से लाभ करती रही और करती रहेगी तथा प्रत्येक मनुष्य को भी करना चाहिए।

आज भारतीय संस्कृति प्रायः दो अरब वर्ष हो गया वैदिक और तान्त्रिक अनुष्ठानों के कारण भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक (शारीरिक तथा मानसिक) विद्याओं के पारङ्गत होकर स्थूल से सूक्ष्म आत्मज्ञान पर्यन्त भी ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व को जाना, उसी विद्या का अनुष्ठान प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित है।

आचार्य पण्डित श्री शिवदत्तमिश्र जी अनेकविध वैदिक और तान्त्रिक अनुष्ठान याग्य शताधिक ग्रन्थों का सम्पादन किये हैं, प्रस्तुत कृति भी इनकी विशुद्ध सर्वांगपूर्ण, सर्वश्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है। इसके पाठ-अनुष्ठान से साधकजनों की सर्वाभीष्ट-फलप्राप्ति अवश्यंभावी है। अतएव इनका प्रयास सर्वतोभावेन स्तुत्य है। और आशा है कि जनकल्याण के योग्य अन्यान्य लुप्त आनुष्ठानिक वैदिक तथा तान्त्रिक ग्रन्थों का सम्पादन कर मानव मात्र के दुःख उल्मूलन में सहयोगी होंगे।

दिनांक १६।५।६९
सी०के० ७।६८, सिद्धेश्वरी,
वाराणसी–१

श्याम सुन्दर शुक्ल
अध्यापक—वाराणसेय संस्कृत
विश्वविद्यालय, वाराणसी

सकल निगमागम पारावारीण, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, वर्तमान शङ्कराचार्यस्वरूप, भारतीय सनातन धर्म-संस्कृति-सभ्यतोद्धारक, अनन्त श्रीविभूषित, पूज्यपाद (श्रीहरिहरानन्दसरस्वती) करपात्र-स्वामि-महाराज का

शुभाशीर्वाद

० ०

मैंने वाञ्छाकल्पलता ध्यान से आद्योपान्त देखी। पाठकर्ता एवं उपासकों के लिए यह सर्वथा उपयोगी है। अनुष्ठान की सुगमता के लिए विद्वान् सम्पादक ने सरल राष्ट्रभाषा हिन्दी में उपासना-विधि का उल्लेख कर दिया है। जिससे पुस्तक का गौरव अत्यन्त वृद्धिगत हो गया है।

इस पुस्तक के सम्पादक पण्डित-प्रकाण्ड पण्डित शिवदत्त-मिश्र शास्त्री महोदय का प्रयास सर्वथा स्तुत्य है। अपौरुषेय वेद के मन्त्रों का पाठ सद्यः फलदायक होता है। अतएव अधिकारी पाठक जन-परम्परा से प्राप्त, इसके पाठ से अपनी मनःकामना पूर्ण कर सकेंगे—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इसके लिए नारायण स्मरणात्मक शुभाशीर्वाद।

ब्रह्मकुटीर, नारदघाट,
वाराणसी
ज्ये० शु० ११, २०२६

करपात्री स्वामी

काशी के ख्याति-प्राप्त दैवज्ञरत्न, तान्त्रिक-शिरोमणि पं० श्री कन्हैयालालजी दीक्षित के ज्येष्ठ पुत्र पं० श्री वामनजी दीक्षित, (पं० वामनजी कन्हैयालाल दीक्षित) ऋग्वेद-कर्मकाण्डी, मन्त्रशास्त्री, प्रसिद्ध ज्योतिषी की

शुभ सम्मति

० ०

मैं विद्वद्वर आचार्य पं० श्रीशिवदत्तजी मिश्र को चिरकाल से जानता हूँ। तन्त्रशास्त्र की पुस्तकों एवं अन्यान्य पुस्तकों के खोज-अनुसन्धान में आपकी बड़ी रुचि है। इस दिशा में आपने कार्य भी बहुत किया है, जो सराहनीय है। प्रस्तुत ग्रन्थ को मैंने आद्योपान्त देखा है। इसमें वैदिक ऋचाओं का संग्रह है। मनुष्य के सभी प्रकार की इच्छा-शक्ति की पूर्ति करने वाला यह ग्रन्थ है। वस्तुतः 'यथा नाम तथा गुणः' इसमें उचित रूप से चरितार्थ होता है। इसके संकलन-संशोधन-सम्पादन के कार्य में आप बहुत दिनों से लगे रहे, जो अब पुस्तक तैयार हुई है। यह सर्वथा शुद्ध तथा विषय-संकलन की दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए श्री मिश्र जी को मैं धन्यवाद देता हूँ। और आशा करता हूँ कि इसी तरह तन्त्रशास्त्र की लुप्त-प्राय अन्यान्य ग्रन्थों का भी प्रकाशन आपके द्वारा सम्पन्न होगा। जिससे साधकों को ज्ञान-प्राप्ति और अनुष्ठानकर्ताओं का कल्याण एवं अभिलषित फल-प्राप्ति हो।

७।४ सिद्धेश्वरी,
वाराणसी-१

—वामनजी दीक्षित

विषयानुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रथमपर्यायः	९	चतुर्थपर्यायः	२५
द्वितीयपर्यायः	१५	वाञ्छाकल्पलतायोगः	३५
तृतीयपर्यायः	२०		

परिशिष्टम्

भूशुद्धिः	५७	शान्तिपञ्चकम्	६८
भूतशुद्धिः	,,	श्रीसूक्तम्	६९
तुरीयसन्ध्याविधिः	५८	सिद्धिलक्ष्मीस्तोत्रम्	७२
नामपारायणविधिः	६२	लक्ष्मीस्तवराजस्तोत्रम्	७५
		धनदालक्ष्मीस्तोत्रम्	८१

मन्त्रानुक्रमणिका

तच्छं योरावृणीमहे	उपनिषद्	समानी व ऽआकूतिः	१०,१९१,४
आ नो भद्राः ऋ०म०१,सूक्त८९म०१		संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने	१०,१११,१
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजू०	१, ८९, २	गणानां त्वा गणपतिं	२, २३, १
ता पूर्वया निविदा	१, ८९, ३	भद्रं नो अपि वातय	१०, २०, १
तन्नो वातो मयोभुवातु	१, ८९, ४	सं गच्छध्वं सं वदध्वं	१०,१९१,२
तमीशानं जगतः	१, ८९, ५	अग्ने मन्यु प्रतिनुदन्	१०,१२८,६
स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः	१,८९,६	भुवः मरुतामोजसे	
भद्र कर्णेभिः	१, ८९, ८	यो मामग्ने भागिन्	
सह नाववतु सह नौ	कठोपनिषद्	अजैष्माद्यासनाम च	१०,१६४,५
यदद्य कच्च	८, ९३, ४	शं नो ऽअस्तु द्विपदे	उपनिषद्
तत्सवितुर्वरेण्यं	३, ६२, १०	नमो ब्रह्मणे नमोऽअस्त्वग्नये	,,
त्र्यम्बकं यजामहे	७, ५९, १२	स त्वा सिचामि यजुषा	
जातवेदसे सुनवाम	१, ९९ १	आभिर्गीर्भिर्यदतो न ऊत	
समानो मन्त्रः समितिः	१०,१९१,३	यु ते पन्थाः सवितः	१, ३५, ११

श्रीगणेशाय नमः

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रि-सङ्कलिता

वाञ्छा-कल्पलता

'जयन्ती'भाषाटीकासहिता

इष्टदेवं नमस्कृत्य मन्त्ररूपं जगद्गुरुम् ।
परम्परानुसारेण शिवदत्तेन वर्णितम् ॥

तत्रादौ सन्ध्यादिक्रियां विधाय, पूजास्थानं गत्वा, भूः-शुद्ध्यादि-भूतशुद्ध्यन्तं सर्वं कर्म समाप्य, त्रीन् प्राणानायम्य सङ्कल्पं कुर्यात् ।

सङ्कल्पः

देशकालौ स्मृत्वा, मम श्रीमहागणपति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-संवादा-ऽग्नि-अमृत-रुद्रप्रसादसिद्ध्यर्थं सर्ववाञ्छासिद्ध्यर्थं च वाञ्छाकल्पलतामन्त्रजपमहं करिष्ये ।

जयन्ती

सर्वदं श्रीशिवं स्मृत्वा श्रीशिवदत्तशर्मणा ।
जयन्तीं मातरं नत्वा जयन्ती क्रियतेऽधुना ॥

सर्व-प्रथम साधक को चाहिए कि प्रातःकाल उठकर स्नान-सन्ध्या आदि नित्य-क्रिया से निवृत्त हो पूजास्थान में जाकर, अपने आसन पर बैठ जाय और भू-शुद्धि से भूत-शुद्धि पर्यन्त सब कर्म समाप्त कर, तीन बार प्राणायाम करे ।

पश्चात् दाहिने हाथ में जल लेकर 'देशकालौ—' से आरम्भ कर, 'जपमहं करिष्ये' तक संकल्प-वाक्य पढ़कर, भूमि पर जल छोड़े ।

मूलेन त्रिः व्यापकं कृत्वा, मूलं दशधा प्रजप्य च न्यासं कुर्यात्, तद्यथा—

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीवाञ्छाकल्पलताख्य-(वैवस्वत) मनोर्नाना-सूक्तसमूहमन्त्रस्य आनन्दभैरव-गणका-ऽङ्गिरस्-कश्यप-वसिष्ठ-विश्वामित्र-संवर्तना[2] ऋषयः, देवी गायत्री निचृद्गायत्री, त्रिष्टुप्-नुष्टुप्-छन्दांसि, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-महागणपति-संवादा-ऽग्नि-अमृतरुद्रो देवताः, श्रीं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-रुद्रप्रसादपूर्वकं निखिलवाञ्छया मम सकल-मनोरथसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

दिग्बन्धः

मूलेन त्रीन् प्राणानायम्य। ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति दिग्बन्धः।

ऋष्यादिन्यासः

आनन्दभैरव-गणका-ऽङ्गिरस्-कश्यप-वसिष्ठ-विश्वामित्र-संवर्त-

मूल मन्त्र से तीन बार दोनों हाथों से शिर से चरण तक स्पर्श करने के पश्चात् मूल मन्त्र का दश बार जप करके न्यास करे।

हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्य श्रीवाञ्छाकल्पलताख्य—' से 'जपे विनियोगः' तक वाक्य पढ़कर जल छोड़े।

मूल मन्त्र से तीन बार प्राणायाम करे। पश्चात् 'ॐ भूर्भुवः स्वरोम्' मन्त्र पढ़कर दिग्बन्धन करे।

---

१. प्रतिदिवसं तुरीय-सन्ध्यां च कृत्वा रात्रौ त्रिपुरसुन्दर्याः नामपारायण-क्रमेण जपार्चनं कुर्यात्—इत्यपि केचिद् वदन्ति।

२. 'संवमना', 'संवाद' पा०।

छन्दोभ्यो नमो मुखे । श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-महागणपति-संवादाऽग्नि-अमृत-रुद्रदेवताभ्यो नमो हृदि । श्रीं बीजाय नमः, गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः । क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ । श्रीमहागणपति-महात्रिपुरसुन्दरी-संवादाग्नि-अमृतरुद्रप्रसादपूर्वकं निखिलवाञ्छासिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः, सर्वाङ्गे ।

करन्यासः

ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं सर्वज्ञताय ह्रां गां ब्रह्मात्मन्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ऐं क्लीं सौः श्रीं महात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं नित्यतृप्तायै ह्रीं गीं विष्णात्मन्यै तर्जनीभ्यां नमः । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं अनादिबोधितायै ह्रूं गूं रुद्रात्मन्यै मध्यमाभ्यां नमः । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं स्वतन्त्रशक्तये ह्रैं गैं ईश्वरात्मन्यै अनामिकाभ्यां नमः । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं नित्यमलुप्तायै ह्रौं गौं सदाशिवात्मन्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अनन्तशक्तये ह्रः गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इसके बाद ऋष्यादि न्यास करे—'आनन्द भैरव···नमः, शिरसि' से शिर का स्पर्श करे। 'देवीगायत्री···नमो मुखे' से मुख को छुए। 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी···नमो हृदि' से हृदय का स्पर्श करे। 'श्रीं बीजाय नमः, गुह्ये' से गुह्यांग (गुप्त अंग) का स्पर्श करे । 'ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः' पढ़कर दोनों पैरों को छुए । 'क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ'मन्त्र पढ़कर नाभि का स्पर्श करे । 'श्रमहागणपति···नमः, सर्वाङ्गे' से सभी अंगों का स्पर्श करना चाहिए ।

पूर्वोक्त प्रकार से ही करन्यास भी करे—'ॐ ऐं क्लीं सौः···अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' से दोनों हाथों के अँगूठे का स्पर्श करे । 'ऐं क्लीं सौः श्रीं

हृदयादिन्यासः

ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं सर्वज्ञतायै हां गां ब्रह्मात्मन्यै हृदयाय नमः । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं नित्यतृप्तायै ह्रीं गीं विष्ण्वात्मन्यै शिरसे स्वाहा । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं अनादिबोधायै हूं गूं रुद्रात्मन्यै नमः, शिखायै वषट् । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं स्वतन्त्रशक्तये हैं गैं ईश्वरात्मन्यै कवचाय हुम् । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं नित्यमलुप्तायै हौं गौं सदाशिवात्मन्यै नेत्रत्रयाय वौषट् । ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं अनन्यशक्तये हः गः सर्वात्मन्यै अस्त्राय फट् ।

…तर्जनीभ्यां नमः' से अँगूठे के बगल वाली अँगुलि का, 'ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुर…मध्यमाभ्यां नमः' से बीच की अँगुलि का, 'ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ह्रीं…अनामिकाभ्यां नमः' से बीच की अँगुली के बगल वाली अँगुली का स्पर्श, 'ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी …कनिष्ठिकाभ्यां नमः' मन्त्र पढ़कर दोनों हाथों की कानी अँगुली का स्पर्श करे, और 'ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी…करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः'से दोनों हाथों की हथेलियों से तथा पीठों से पीठों को स्पर्श करे ।

इसी प्रकार हृदयादि न्यास भी करे—'ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुर… हृदयाय नमः' से हृदय का स्पर्श, 'ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी …शिरसे स्वाहा' से शिर का, 'ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुर…शिखायै वषट्' से शिखा का स्पर्श, 'ऐं क्लीं सौः…कवचाय हुम्' से दोनों हाथ की भुजा का स्पर्श, 'ऐं क्लीं सौः श्रीमहा……नेत्रत्रयाय वौषट्' से दोनों नेत्रों का स्पर्श करे, 'ऐं क्लीं सौः……अस्त्राय फट्' तक पढ़कर ताली बजा दे।

दिग्बन्धः

'ॐ ह्रीं' इति मन्त्रेण दिग्बन्धः ।

हेमाद्रौ हेमसंस्थां मुदितसुरगणैरीड्यमानां सुरेशीं
पुष्पाणां बाण-पाशा-ऽङ्कुश-कमलकरां रक्तवेषातिरक्ताम् ।
दिक्षूद्यद्भिश्चतुर्भिर्मणिमयकलशैः पञ्चशक्त्यञ्चितां च
स्वच्छां क्लृप्ताभिषेकां ललित-भगवतीं भूतिदामाश्रयामि ।।
बीजापूरगदेक्षु-कार्मुकरुचा चक्राब्जपाशोत्पल-
ब्रीह्यग्र - स्वविषाण - रत्नकलश - प्रोद्यत्कराम्भोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया श्लिष्टोज्ज्वलद्भूषया
विश्वोत्पत्ति-विनाश-संस्थितिकरोऽविघ्नो विशिष्टार्थदः ।।
धवल-नलिनि-शोभा-चन्द्रचूडं निषण्णं

उसके बाद 'ॐ ह्रीं' मन्त्र पढ़कर दिग्बन्धन करे ।

---

१. हेमाद्रौ हेमपीठस्थितममरगणैरीड्यमानां विराजत्
पुष्पेश्विष्वास-पाशाङ्कुश-कमलकरां रक्तवेशातिरक्ताम् ।
दिक्षूद्यद्भिश्चतुर्भिर्मणिमयकलशैः पञ्चशक्त्यञ्चितैः स्वै-
र्वृक्षैः क्लृप्ताभिषेकां भजत भगवतीं भूतिदामन्त्ययामे ।।१।।
— इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२. 'गदेषु' इति पा० । ३. 'विपत्ति' इति ।

४. धवल-नलिन-राजच्चन्द्रमध्ये निषण्णं करधृतवरपाशं साभयं साङ्कुशं च ।
सपदि वरदमिन्दु-क्षीरवर्णं त्रिनेत्रं प्रणमति शुभवक्त्रमिक्षु-संबादयन्तम् ।।
— इति क्वचित्पुस्तके पाठः ।

करधृत-वर-पाशं साऽभयं साङ्कुशं च ।
सपदि वरद-दुग्धाकारवर्णं त्रिनेत्रं
प्रणमति सुरवन्द्यं दिक्षु संवादयन्तम् ॥३॥
स्फटिकनलिनसंस्थं मौलिलब्धेन्दुरेखं
गलदमृतजलार्द्रैः चन्द्रवह्न्यर्कनेत्रम् ।
स्वकर-कलितमुद्रं वेदसूत्राक्षमालं
रँजतगिरिस-युक्तं गौरमीशं नमामि ॥४॥
द्वाभ्यां विभ्राजमानं वरकनकमहाशृङ्खलाभ्यां भुजाभ्यां
बीजापूरादि-बिभ्रद् दशभुजललितं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम् ।
सन्ध्यासिन्दूरवर्णं स्तनभरनमितं तुन्दिलं सन्नितम्बं
कण्ठादूर्ध्वं करीन्द्रं युवतिमयमधः स्तौमि विघ्नगणेशम्॥

इति ध्यात्वा, मानसोपचारैः सम्पूज्य, गामित्यादि षड्भिः दीर्घैर्देहाङ्गन्यासं विधाय, नवमुद्राः प्रदर्श्य,

---

तत्पश्चात् 'हेमाद्रौ हेमसंस्थां'—(श्लोक १) से 'स्तौमि विघ्नगणेशम्' (श्लोक ५) तक श्लोक पढ़कर देवी का ध्यान करे।

---

१. 'स्फुटित' पा० । २. 'रसार्द्रं' । ३. 'पाशा–' । ४. 'स्फटिकरजतमुक्तां' । ५. 'विभ्राजमानां' । ६. 'नौमि' ।

शङ्ख-चक्रं धनुश्चैव योनि-धेन्वङ्कुशं तथा ।
पाशं च सुमुखं चैव क्षोभणं नव-संख्यया ॥ १ ॥

इति नवमुद्राः ।

इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचार से पूजा कर, 'गां' इत्यादि अर्थात् 'ऐं क्लीं सौः···गां ब्रह्मात्मन्यै अंगुष्ठाभ्यां नमः' से आरम्भ कर '–गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' पर्यन्त छह मन्त्रों से देहांगन्यास कर, नवमुद्रा दिखावे ।

---

१. शङ्खमुद्रा तु वामाख्यमङ्गुष्ठं दक्षमुष्टिगम् ।
वामाङ्गुल्यग्र-दक्षाङ्गुष्ठस्य योगे प्रजापते ॥

२. चक्रमुद्रा करतले विपरीते विधाय च ।
अङ्गुष्ठौ वेशयेच्चैव कनिष्ठाऽनामिकान्तरे ॥

३. धनुर्मुद्रा कनिष्ठाऽनामिके चाऽन्योन्यहस्तयोः ।
तर्जनीमध्यमे चापि दक्षस्कन्धे प्रदर्शयेत् ॥

४. योनिमुद्राऽन्योन्यकर - कनिष्ठा - तर्जनीयुतिः ।
व्यस्ते तले शेषाङ्गुल्यावङ्गुष्ठावनामिके ॥

५. अन्योन्याभिमुखौ श्लिष्टौ कनिष्ठाऽनामिका पुनः ।
तथा तु तर्जनी मध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥

६. अङ्कुशाख्या भवेन्मुद्रा पृष्ठेऽनामा-कनिष्ठया ।
अङ्गुष्ठे तर्जनी वक्रा सरला चाऽपि मध्यमा ॥

७. पाशाह्वया तु वामस्य तर्जन्यां दक्षतर्जनीम् ।
क्षिप्त्वा बद्ध्वा मुष्टियुगं तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्युतिः ॥

८. सुमुखे संहतौ हस्तावुत्तानावाकुञ्चिताङ्गुली ।
प्रह्लादिनी तत्र शक्तिः सुमुखानन्ददायिनी ॥

९. तर्जन्यौ सरले कृत्वा शेषाङ्गुल्यो नखैर्युताः ।
कनिष्ठा-मध्यपर्वस्थावङ्गुष्ठौ क्षोभिणीं मता ॥

शान्तिस्तवः

ॐ तच्छं॒ यो॒ रा॒वृ॒णी॒महे॒ गा॒तुं य॒ज्ञा॒य॒ गा॒तुं य॒ज्ञ॒प॒तये। दैवी॑ स्व॒स्ति॒र॒स्तु नः॒ स्व॒स्ति॒र्मानु॑षेभ्यः। ऊ॒र्ध्वं जि॑गातु भेष॒जं शं नो॑ ऽअस्तु द्वि॒प॒दे॒ शं च॑तुष्प॒दे॥ १॥

आ नो॑ भ॒द्राः क्र॑तवो यन्तु वि॒श्वतो॑ ऽअदब्धासो अ॑ 'रीतास॒ उ॒द्भिदः॑। दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद् वृ॒धे अस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वेदि॑वे॥ २॥ दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां दे॒वानां॑ रा॒ति॒र॒भि नो॒ नि व॑र्तताम्। दे॒वानां॑ सख्यमुप॑ सेदिमा व॒यं दे॒वा न॒ आयुः॑ प्रतिर॒न्तु जी॒वसे॑॥ ३॥ तान् पू॒र्वया॑ नि॒विदा॑ हूमहे व॒यं भगं॑मि॒त्रम॑दि॑तिं दक्ष॒म॒स्रिध॑म्। अ॒र्य॒मणं॑ वरु॑णं॒ सोम॑म॒श्विना॒ सर॑स्वती नः॒ सुभ॑गा मयस्करत्॥ ४॥ तन्नो॑ वातो॑ मयो॒भु वा॑तु भेष॒जं तन्मा॒ता पृ॑थि॒वी तत् पि॒ता द्यौः। तद् ग्रावा॑णः सोम॒सुतो॑ मयो॒भुव॒स्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥ ५॥ तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धि॒यं जि॒न्वम॑वसे हूमहे व॒यम्। पूषा नो॒ यथा॑ वेद॒सामस॑द् वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युर॑द॒ब्धः स्व॒स्तये॑॥ ६॥ स्वस्ति॑ न॒ ऽइन्द्रो॑ वृद्ध॒श्रवाः॒ स्वस्ति॑ नः॒ पूषा॑ वि॒श्ववे॑दाः।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥७॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥८॥ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ९ ॥

इति शान्तिस्तवं पठित्वा, देवतात्मनोरैक्यं भावयन् नमस्कृत्य शनैर्जपेत् ।

अथ प्रथमपर्यायः [१]

ऐं अथ कल्पलता ऐं । ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गंगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ यद्य कच्चं वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे । ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १ ॥

तत्पश्चात् 'ॐ तच्छं यो रावृणी' से प्रारम्भ कर, 'द्विषामहै' तक शान्ति पाठ पढ़े ।

इस प्रकार शान्ति-पाठ पढ़कर, देवता और आत्मा में एकता की भावना कर नमस्कार करे तथा धीरे-धीरे जप-पाठ करे ।

---

१. 'गुगुरीं,' 'गगरी' इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ २ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ३ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय

स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ४ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानो समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ५ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य ऽआ । इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥६॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानो समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन

वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गण-पतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ७ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्ली ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ८ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ॥ ॐ गं क्षिप्र-प्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ९ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं

सौः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥१०॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥११॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत ऽआ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों

सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥१२॥

ॐ भूः भद्रं नो अपि वातय मनः ।

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं जूं सः वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे वश्यत्वनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा ।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये[1] ॥ १ ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरतां च जायेत संवादाग्ने ! प्रसीद मे ॥ २ ॥

इति प्रथमपर्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार से 'ऐं अथ कल्पलता— '(प्रथम-पर्याय) से आरम्भ कर 'संवादाग्ने ! प्रसीद मे' (चतुर्थ-पर्याय) तक पाठ करे ।

दमयन्ती तथा नल को मैं नमस्कार करता हूँ । यह नमस्कार कलि (कलह-पाप) के दोष को नाश करने वाला हो ॥१॥

जिस संवादाग्नि के प्रभाव से विभिन्न मतवाले ब्राह्मणों में एकता तथा शान्ति स्थापित होती है । ऐसे प्रभाव से युक्त हे संवादाग्ने ! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ २ ॥

---

१. इति केरलपुस्तके पाठः । अन्यस्थाने 'ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्र प्रतिकूलं मे नश्यतु, अनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा' इति पाठः ।

२. 'प्रशान्तिदः' इत्यपि पाठः ।

अथ द्वितीयपद्धतिः [२]

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ यद्द्य कच्चं वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥२॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय

मामृतात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ३ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरी श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्_अग्निः ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥४॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौ गं गगलरी श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ५ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ६ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ७ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति

वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ८ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं गं गगलरां श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ९ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १० ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं

कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ यद्य कच्चं वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य। सर्वं तदिं द्र ते वशं ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ११ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम्। प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते ३ मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १२ ॥

ॐ भुवः मरुतामोजसे स्वाहा ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं जूं सः वं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे वश्यत्वनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा।[1]

---

१. इति केरले विशेषवाक्ये पाठः। अन्यमतेन तु-'ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आंह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यतु अनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा।' इतिपाठः।

दमयन्ती-नलाभ्यां तु नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवत्यत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥ १ ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरतां च जायेत संवादाग्ने ! प्रसीद मे ॥ २ ॥

इति द्वितीयपर्यायः ॥ २ ॥

०

अथ तृतीयपर्यायः [३]

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ यद्द्य कर्च्च वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य । सर्व्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं इएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ २ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरों श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ३ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ४ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं ग गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभि मन्त्रये

वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्र-प्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ५ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ६ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ७ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ८ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥९॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं

गणपतये वरवरद आं हीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १० ॥

ॐ ऐं श्रीं हीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं ऐं क्लीं सौः ॐ यद्द्य कच्चं वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं हीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ११ ॥

ॐ ऐं श्रीं हीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं ऐं क्लीं सौः ॐ यो मामग्ने भागिनँ सं तमथा भागं चिकीर्षति । अभागमग्ने तं कुरु मामग्ने भागिनं कुरु स्वाहा ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं हीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १२ ॥

ॐ स्वः इन्द्रो विश्वस्य राजति ।

ॐ ऐं श्रीं हीं क्लीं जूं सः वं ठं अमृत-

रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे वशंतु, अनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा ।[२]

दमयन्ती-नलाभ्यां तु नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवत्यत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥ १ ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरतां च जायेत संवादाग्ने ! प्रसीद मे ॥ २ ॥

इति तृतीयपर्यायः ॥ ३ ॥

०

अथ चतुर्थपर्यायः [४]

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ यद्द्य कच्च वृत्रहन्नुदगा ऽअभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १ ॥

---

१. 'वश्यत्वनुकूल' इत्यपि पाठः ।

२. इति केरले विशेषपाठः । अन्यत्र तु—'ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यतु, अनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा ।' इति पाठः ।

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं॥ २॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं॥३॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये

वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ४ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समाने नो वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ५ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौ ॐ समानी _ऽआकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥६॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं

सौः ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ७ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रों कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ८ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं

क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ९ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १० ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ ऽअ॒भि सू॑र्य । सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ११ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ अजै॑ष्मा॒द्यास॑नाम॒ चाऽभू॒माना॑गसो व॒यम् । जा॒ग्रत्स्व॒प्नः स॑ङ्क॒ल्पः पा॒पो यं द्वि॒ष्मस्तं स ऽऋ॑च्छतु॒

यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥ ॐ गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १२ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शं नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे। ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं जूं सः वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे वश्यत्वनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा[1] ।

दमयन्ती-नलाभ्यां तु नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादी भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥ १ ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्दैरतां च जायेत संवादाग्ने ! प्रसीद मे ॥ २ ॥

इति चतुर्थपर्यायः ॥ ४ ॥

०

पुनः ऋष्यादि-न्यासं कुर्यात्, तद्यथा--अस्य श्रीवाञ्छा-कल्पलतामन्त्रस्य आनन्दभैरव-गणका-ऽङ्गिरस-काश्यप-वसिष्ठ-

---

पश्चात् पुनः ऋष्यादि न्यास करे, जो इस प्रकार है-'अस्य-श्रीवाञ्छाकल्पलतामन्त्रस्य'-से विनियोगपूर्वक ऋषि आदि न्यास से

---

१. इति केरलपुस्तके विशेषपाठः । अन्यत्र तु—'ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा ।' इति पाठः।

विश्वामित्र-संवर्तनाऋषयः—इत्यादि ऋषि-अङ्ग-करन्यासान्तं पूर्ववद् विधाय, त्रिभिः श्लोकैर्ध्यात्वा, कल्पलतामन्त्रं स्मरेत्।

तद्यथा—

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गगलरीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ ललितागमिण्यै स्वाहा। ॐ भद्रं नो अपि वातय मनः। तच्छं यो रावृणी महे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये। दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः। ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे। १।

ॐ नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नमः ओषधीभ्यः। नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि॥ २॥

ॐ भद्रं नो अपि वातय मनः॥ ॐ सं त्वा सिचामि यजुषा प्रजामायुर्धनं च॥ ३॥

ॐ आभिर्गीर्भिर्मदतो न ऊनं आप्याय य हरिवो वर्धमानः। यदा स्तोतृभ्यो महि गोत्रा रुजासि

आरम्भ कर, करन्यास पर्यन्त पहले के अनुसार करके तीन श्लोक से देवता का ध्यान करे और कल्पलता के 'ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं'—से लेकर 'अधि च ब्रहि देव' तक का पाठ करे।

भूयिष्ठभाजो अधते स्यामाब्रह्म प्रावादिष्म तन्नो माहासीत् ॥ ४ ॥

ॐ सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ५ ॥

ॐ यें ते पन्था सवितः पुर्व्यासो ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे । तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभीं रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ६ ॥

फलश्रुतिः

शिवं करोतु विश्वेशी प्रसन्ना वरदा सदा ।
[1]त्रिपुरे ! श्रीः ! जगन्मातः ! परमाधि-सुखस्पते ॥१॥
निशान्ते तु प्रतिदिनं [2]चतुर्वृत्तिः पठेद् यदि[3] ।
सर्वैश्वर्यं [4]लभेत् सर्वं वेदपाठफलं लभेत् ॥२॥

फलश्रुति—हे त्रिपुरे, हे जगन्माता ! तथा हे श्रीअधिस्वरूप सुख की स्वामिनि, तथा हे विश्वेश्वरि, प्रसन्न रहने वाली वरदायिनी भगवती, मेरा कल्याण करो ॥१॥ प्रातःकाल में यदि इस मन्त्र का चार आवृत्ति पाठ करे तो उसे समस्त ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, और उसे वेद पारायण का फल होता है ॥२॥

---

१. 'त्रिपुरा श्रीजगन्माता परमादि' इति प्रचलितपाठः । २. 'चतुर्वारं' इत्यपि पाठः । ३. 'पठेदिह' इति क्वचित्पुस्तके । ४. 'लभेत्' इति क्वचित्पुस्तके ।

आवर्तनत्रये लक्ष्मीः पञ्चावृत्तौ जगद्वशम् ।
दशावृत्तौ शिवादीनां देवानां शक्तिमान् भवेत् ॥३॥
शतावृत्तौ सार्वभौमो दरिद्रोऽपि भवेन्नरः ।
नार्थवादोऽथर्वणि स्याद् वसिष्ठवचनं यथा ॥४॥
वाञ्छाकल्पलतायास्तु न होमो न च तर्पणम् ।
स्मरणादेव विद्याया यदिच्छति तदाप्नुयात् ॥५॥

तीन आवृत्ति पढ़ने से लक्ष्मी, पाँच आवृत्ति पाठ करने से संसार वश में हो जाता है। दश आवृत्ति पाठ करने से शिवादि देवता की तरह शक्तिमान् हो जाता है ॥ ३ ॥ दरिद्र मनुष्य यदि १०० आवृत्ति पाठ करे, तो सार्वभौम हो जाता है। अथर्ववेद में कहा गया यह मन्त्र है, यह सर्वथा सत्य है, क्योंकि वसिष्ठ कहते हैं कि अथर्ववेद में अर्थवाद सर्वथा है ही नहीं ॥ ४ ॥ वाञ्छाकल्पलता में न होम करने की आवश्यकता है, न तो तर्पण की ही आवश्यकता है। केवल स्मरण मात्र से ही मनुष्य जो चाहता है वह प्राप्त कर सकता है ॥५॥ यदि न करे तो १०८ बार पुनः जप कर उसका प्रायश्चित्त कर देना चाहिए।

---

१. 'प्रीतिमान्' इति ।

२. 'अष्टावृत्तौ इष्टसिद्धिः समवेत् सर्वमन्त्रतः' इति क्वचित्पुस्तके पाठः ।

३. 'नाथर्वणेऽर्थवादः स्याद् वसिष्ठस्य' इति पाठः क्वचिद् दृश्यते ।

[1]अकृतेऽष्टोत्तरशतं प्रायश्चित्तम् ।

मूलविद्या जपेद् भूयः कर्ता कर्माधिकारवान्[2] ॥६॥

इति देवरिया-मण्डलान्तर्गत-'मझौली राज्य' (सम्प्रति वाराणसी)-निवासि-पण्डित-श्रीसन्तशरणमिश्रात्मज-आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिसंस्कृते आथर्वणसौभाग्यकाण्डे सुन्दर्या वाञ्छाकल्पलतोपस्थानं समाप्तम् ।

फिर कर्त्ता को कर्म करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, तथा मूलविद्या का जप पुनः कर सकता है ॥ ६ ॥

विशेष—जो साधक रात्रि में त्रिपुरा-अर्चन करके नाम-पारायण करता रहेगा । तथा प्रातःकाल त्रिपुरामूर्ति को जप सुनाता रहेगा अथवा किसी देवता का प्रतिदिन १००० जप करेगा और पश्चात् आठ पाठ वांछा का सुनावे एवं विधिपूर्वक अखण्डदीप रखेा तो वह दो मास के भीतर ही अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर लेगा । देवत उससे बात भी करता है । ध्यान ठीक न होने से वह चोट भी करता है । बिना नागा बलिदान भी प्रतिदिन करना चाहिए ।

इस प्रकार देवरिया-मण्डलान्तर्गत-'मझौली राज्य' (सम्प्रति वाराणसी) निवासी पण्डित श्रीसन्तशरणमिश्रात्मज-पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'जयन्ती' भाषाटीका में अथर्ववेद के सौभाग्यकाण्ड में त्रिपुरसुन्दरी का वाञ्छाकल्पलतोपस्थान समाप्त ।

---

१. 'प्रमादादेकदिनेऽपि जपलोपे, अनशने सति एतस्यैवाऽष्टोत्तशतावृत्तिः ।'

२. 'कर्तुः कर्माधिकारवान्' इति पा० ।

[लक्ष्मीविनायकमन्त्रः]

'ॐ गं श्रीं सौम्याय लक्ष्मी गणेश वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।'

'वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं श्रीं ह्रीं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं में वशमानय स्वाहा ऐं क्लीं सौः' इत्यपि क्वचित्पुस्तके पाठः ।

श्रीबुद्धिराजविरचितः

वाञ्छाकल्पलता-प्रयोगः

विमृश्याऽऽथर्वणं वेदं कौमारीं संहितां तथा ।
वाञ्छामनोर्विधिः सम्यक् बुद्धिराजेन तन्यते ॥१॥

अथ वाञ्छाकल्पलता-उद्धारो यथा प्रयोगपारिजाताख्ये आथर्वणे महेश्वर उवाच—

तुरीयामर्धरात्रे च कुर्यात् सन्ध्या विधानवत् ।
विनार्कमण्डलं देवीं ध्यानमन्यत् पुरोक्तवत् ॥२॥
तुरीयकूटं विद्यायाः पद्मरागसमप्रभम् ।
त्रयोदशाक्षराकारं सहस्राम्बुजके स्मरेत् ॥३॥

त्रयोदशाक्षरी यथा—

हसकल हसकहल सकलह्रीम् ।
वह्न्यासापुटेनाऽथ बहिस्तारकमण्डलात् ।
आवाह्य परमाकाशे स्मरेद् देवीं तदुद्भवाम् ॥४॥
अथोक्तरूपिणीं पश्चात्तुरीयं कूटमुच्चरन् ।
दद्यादर्घ्यं त्रयं तस्यै तेनैव त्रिः प्रतर्पयेत् ॥५॥

जपेत्तुरीयगायत्रीं प्राणायामादिपूर्वकम् ।
कालनित्यां मूलविद्यामष्टोत्तरशतं जपेत् ॥६॥
तुरीयकूटमेतावत्सङ्ख्यं जप्त्वा निवेदयेत् ।
संस्तुत्वा परमाकाशे सहस्रारवराटके ॥७॥
समुद्रास्य तथाऽऽत्मानं ध्यायेत् कामकलात्मकम् ।
एतद्विद्योपासकानानामेतत् सन्ध्यात्रितुष्टयम् ॥८॥
आवश्यकं न चाऽन्येषां मन्त्राणां समुदीरितम् ।
बाह्याशक्तौ ध्यानरूपा सन्ध्यानक्तं विधीयते ॥९॥
उपस्थानं कल्पलता-विद्यायाः समुदीरितम् ।
तारं वाचं श्रियं मायां वाद्यं कामं वराहकम्[1] ॥१०॥
गणेशबीजं गुगुरी ततः पञ्चदशाक्षरी ।
ऐं क्लीं सौः कथितं बीजं त्रितयं त्रैपुरं ततः ॥११॥
पूर्वानुषङ्गमेकोनत्रिंशद्भिः कथितोऽक्षरैः ।
पर्यायेष्वनुषङ्गाभ्यां चतुर्ष्वपि पठेदृचः ॥१२॥
ऋचो यदद्यकाद्याः आनुलोम्येन षट् पठेत् ।
ता एव प्रतिलोम्येन पुनः षष्ठीं विना पठेत् ॥१३॥

---

१. वराहकं नाम ग्लौमित्यर्थः ।

एवमेकां दशर्चः स्युरनुषङ्गद्वयान्विताः ।
गंक्षिप्रप्रसादना यस्माद् गणपतये ततः ॥१४॥
योजयेद् वरवरद पाशमायां कुशांस्ततः ।
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति वै पठेत् ॥१५॥
सौः क्लीमिति चाऽन्ते च स्यादनुषङ्गोऽयमुत्तरः ।
देव्युत्तरानुषङ्गोऽयं भवेत् षट्त्रिंशदक्षरः ।
पूर्वोत्तरानुषङ्गाभ्यां पठेदेका दशाऽप्यृचः ॥१६॥

[एकादशाप्यृच इत्यत्र यद्यपि एकादशाप्यृच इत्यनेन एकादशैव ऋचः पूर्वोत्तरानुषङ्गाभ्यां पठेदित्युक्तम् । तथाऽपि कुमारसंहितायां तारादिमन्त्रे बालान्ते इत्यादि बालायाः प्रतिरोहान्तमित्यनेन ग्रन्थेनाऽग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । पूर्वोत्तरानुषङ्गाभ्यामित्यत्र 'अपि'शब्देन च द्वादशीमपि पूर्वोत्तरानुषङ्गाभ्यां योजयेदित्यर्थः ।]

यदद्यकच्चगायत्री त्र्यम्बकं जातवेदसे ।
समानो मन्त्र इत्येताः प्रतिलोम्ये दशाभवन् ॥१७॥
षष्ठी प्रतिपर्यायं भिन्नाऽभिन्नामुदीरयेत् ।
सं समिद्युवसे आद्ये संगच्छध्वं द्वितीयके ॥१८॥
समानो मन्त्रस्तार्तीये समानी वश्चतुर्थके ।
एकादश पठित्वैवमृचाऽथ द्वादशीं पठेत् ॥१९॥

भिन्नाऽभिन्ना द्वादश स्युः पर्यायेषु चतुर्ष्वपि ।
गणानां त्वा गणपतिमग्ने मन्युमतः परम् ॥२०॥
यो मामग्ने तृतीये स्यादजैष्माद्या चतुर्थके ।
व्याहृतिः प्रथमं चोक्ता भद्रन्न इति मन्त्रकः ॥२१॥
तत आद्ये तु भद्रन्नो मरुतामोजसे ततः ।
तृतीय इद्रो निश्वस्य अन्ते शन्नो भवेति वै ॥२२॥
पठेदों ह्रीं वं ठममृततो रुद्राय वै ततः ।
पाशं मायां कुशानुक्ता प्रतिकूलं म इत्यतः । २३॥
नश्यत्वनुकूल मे वशमानय ठ-द्वयम् ।
दमयन्ती-नलाभ्यां चेदृग्-द्वयं ततः परम् ॥२४॥
तारो ह्रीं वं ठमित्यादि चतुर्ष्वेवं समं भवेत् ।
एकैव पञ्चमी षष्ठी सप्तमी च तृतीयके ॥२५॥
एवं कल्पलताख्योपस्थानस्यैष क्रमो भवेत् ।
प्रयोगपारिजाताख्ये आथर्वणविधिं स्मृतः ॥२६॥

इति वाञ्छा-उद्धारः समाप्तः ।

०

अन्यत्रापि कुमारसंहितायाम् ।

शिव उवाच—

शृणु देव ! प्रवक्ष्यामि वाञ्छाकल्पलतामहम् ।

श्रीविद्यागणनाथस्य रहस्यं परमादभुतम् ॥२७॥
आदौ गुरून् गणाध्यक्षं क्षेत्रपालं सरस्वतीम् ।
नत्वाऽस्य मन्त्रमुच्चार्य कृत्वा तालत्रयं ततः ॥२८॥

प्राणानायम्य मूलेन तेन त्रिर्व्यापयेदिति ।
ततो मन्त्रजपं कुर्याद्दृषि-दैवत-पूर्वकम् ॥२९॥

अस्य विघ्नगणेशस्य वाञ्छाकल्पलतामनोः ।
नानासूक्तस्य समूहस्य ऋषयः कथिता मया ॥३०॥
आनन्दभैरवो देवो गणकः सर्वमन्त्रवित् ।
आङ्गिरसः कश्यपश्च वशिष्ठऋषिसत्तमः ॥३१॥
विश्वामित्रश्च सवादो नानाऋषिरुदाहृतः ।
छन्दांसि सुबहून्यत्र ज्ञातव्यानि पृथक् पृथक् ॥३२॥
देवीपूर्वा निचृत्पूर्वा गायत्री नुष्टुभं तथा ।
देवता च महादेवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि ! ॥३३॥
गणेशाग्निश्च संवादोऽमृताख्यो रुद्र एव च ।
श्रीं ह्रीं क्लीं बीजशक्तिं च कीलकं च महेश्वरि!॥३४॥
वाञ्छितार्थप्रसिद्ध्यर्थं विनियोग इहोच्यते ।
प्रोक्ते ह्रीं श्रीं बीजशक्तिं स्वाहा कीलकमुच्यते ॥३५॥

करान्नन्यासभेदस्य विधिरेष इहोच्यते ।
बालां प्रथममुच्चार्य संबुध्या सुन्दरि ! वदेत् ॥३६॥
ह्रीमुक्तानुक्रमेणैव सर्वज्ञायै वदेत्ततः ।
मायां च जातिभिः षड्भिः दीर्घाद्यैर्ह्रीमिति प्रिये!॥३७॥
दीर्घसंयुक्तगं पञ्चभिर्ब्रह्मभिः क्रमात् ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥३८॥
सर्वात्मेन च देवेशि ! कुर्यान्नित्यं षडङ्गकम् ।
हेमाद्रौ हेमपीठेति ध्यात्वा श्रीत्रिपुरां पराम् ॥३९॥
बीजापूरेति विघ्नेशं धवलेत्यादिनाऽपि च ।
द्वाभ्यामित्युदितं ध्यानं सर्वतन्त्रे तदुच्यते ॥४०॥
स्फुटितेति शिवं ध्यायेत् सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।
एवं ध्यात्वा शुभे देशे तद्भेदेन[1] च साधकः ॥४१॥

ध्यानानि प्रयोगे वक्ष्यन्ते ।

जपेदिष्ट-सिद्ध्यर्थं [2]विद्याग्रहणसंज्ञितम् ॥४२॥
अष्टवा जपेन्नित्यं सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ।
जपेत् षोडशसाहस्रं तर्पणाहुतियोगतः ॥४३॥

---

१. तद्भेदेन वैदिकमन्त्रभेदेन इत्यर्थः । २. विद्याग्रहणं दीक्षेत्यर्थः ।

श्रीविद्या गणनाथस्य ऋग्भिः सूक्तमलङ्कृतम् ।
श्रीविद्यायाश्च सर्वार्थसाधिन्याः साधितुं मनुम् ॥४४॥
पुरश्चर्याविधानेन साधकः सर्वदा जपेत् ।
धर्ममर्थं च कामं च दैवतैक्यं च विन्दति ॥४५॥
किमत्र बहुनोक्तेन यद्यदिच्छति साधकः ।
तत्सर्वं लभते नित्यं वाञ्छाकल्पलतामनोः ॥४६॥
आनुपूर्व्या च ऋग्भेदं सूक्तं चैव पृथक् पृथक् ।
साधकानां सुबोधाय वाञ्छितार्थं प्रसिद्धये ॥४७॥

शिव उवाच

मन्त्रोद्धारमशेषेण प्रवक्ष्यामि कुलेश्वरि !
अप्रकाश्योऽयमुद्धारः सर्वत्र हितकांक्षिभिः ॥४८॥

तारवाग्भवरमा भुवनेशी
वाद्यकामधरणो गणनाथात् ।
[1]यक्षबीजयुगलं तुरि दीर्घं
श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरि-मनुः ॥४९॥
[2]तत्सुतां मनुमथादितो वदेत्
संवदेदथ यदद्यकञ्च ऋक् ।

---

१. यक्षबीजयुगलं नाम 'गुगुरी' इति ज्ञेयम् । २. तत्सुतां बालाबीजत्रयमित्यर्थः ।

विघ्नबीजमनुवर्ण्यसाधको
[1]मन्त्रराजमथ संवदेत् क्रमात् ॥५०॥
क्षिप्रप्रसादनायेति तथा गणपतिं वदेत् ।
चतुर्थ्यां वरवरद-पदमुक्त्वा वेदत्ततः ॥५१॥
पाशशक्त्यं कुशैः सर्वजनं मे वशमानय ।
अवरोहेण बालायाः स्वाहान्ते त्र्यक्षरीं वदेत् ॥५२॥
तारादि-मन्त्रे बालान्ते वदेत् सावित्रिकामपि ।
त्र्यम्बकं मनुं जातवेदो मन्त्रमथो वदेत् ॥५३॥

समानो मन्त्रमप्यत्र संसमिद्युवसे तथा ।
एवमारोहमार्गेण प्रोक्ता ऋग्मन्त्रजातयः ॥५४॥
समानो मन्त्रमारभ्य प्रतिरोहं वदेत्ततः ।
ऋचं यदद्यकच्चेति प्रतिरोहावसानकम् ॥५५॥
गणानां त्वा ऋचं वाऽपि द्वादशीं योजयेदिह ।
बालायाः प्रतिरोहान्तं वदेत् तद्वदथोत्तरम् ॥५६॥
व्याहृतिं प्रथमामुक्त्वा भद्रकाली मन्त्रमावदेत् ।
प्रणवं भुवनेशीं च वं ठं बीजद्वयं वदेत् ॥५७॥

---

१. मन्त्रराजक्षिप्रगणपतय इत्यर्थः ।

वदेदमृतरुद्रं च चतुर्थं पाशबीजकम् ।
हल्लेखामङ्कुश प्रोक्ता प्रतिकूलं पदं वदेत् ॥५८॥
मे नश्यत्वनुकूलं मे द्विर्वदेद् वशमानय ।
वह्निजायां तमुक्त्वाऽथ नलसूक्तं वदेत् ततः ॥५९॥
नलसूक्तं दमयन्ती-नलाभ्यामिति कथ्यते ।
दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये । ६०॥
ऐकमत्यं भवेदेषा ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरतां च जायेत संवादाग्ने ! प्रसीद मे ॥६१॥
जपित्वैवं चतुर्वारमेकावृत्ति भवेत्तदा ।
अष्टवारं जपेन्नित्यमष्टसिद्धिर्भविष्यति ॥६२॥
प्रणवादि यदद्येति गायत्री त्र्यम्बकं तथा ।
जातवेद समानश्च संसमिद्युवसे तथा ॥६३॥
एवमारोहरूपोऽयमवरोहस्तथोच्यते ।
समानो मन्त्रमाख्याय यदद्येति ऋगन्तकम् ॥६४॥
आरोहे तु द्वितीयस्य दलस्यापि तथोच्यते ।
संगच्छेति वदेत्यष्टे अवरोहः समानकः ॥६५॥

अत्रापि द्वादशस्थाने अग्ने मन्युं वदेन्मनुम् ।
द्वितीयां व्याहृतिं प्रोक्ता मरुतामोजसे वदेत् ॥६६॥
तृतीयस्य दलस्यापि षष्ठस्थाने तथा वदेत् ।
समानो मन्त्रमत्रापि द्वादशे योजयेत्तथा ॥६७॥
यो मामग्ने जपित्वा तु वह्निजायां तमावदेत् ।
तृतीयायां व्याहृतीं ब्रूयादिन्द्रो विश्वस्य राजति ॥६८॥
दलस्यापि चतुर्थस्य षष्ठस्थाने तथा वदेत् ।
समानीव ऋचं चैव अजैष्मा द्वादशी भवेत् ॥६९॥
ऋगन्ते प्रजपेत्तत्र व्याहृती त्रितयं क्रमात् ।
ततः शन्नो भव ब्रूयात् द्विपदे शं चतुष्पदे । ७०॥
उत्तरं दलमप्यत्र योजनीयं महेश्वरि ! ।
जपित्वा साधकश्रेष्ठश्चतुर्वारं पृथक् पृथक् ॥७१॥
इत्येतत् कथितं गुह्यं भुक्ति-मुक्तिप्रदायके ! ।
जपेत् षोडशसाहस्रं षट्सहस्रमथापि च ॥७२॥
पायसेन हुनेद् देवी नारिकेलफलैस्तिलैः ।
असाध्यं साधयेल्लोके अवश्यं वशमानयेत् ॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥७३॥

इति कौमारसंहितायां वाञ्छाकल्पलतामन्त्रोद्धारो
नाम द्वादशः पटलः ।

तन्त्रान्तरे–

वाञ्छाकल्पलतायास्तु न होमो न च तर्पणम् ।
स्मरणादेव विद्यायाः मुक्तो भवति साधकः ॥७४॥
एकावृत्त्या वशेल्लक्ष्मी पञ्चावृत्त्या वशं जगत् ।
दशावृत्त्या तथा विष्ण रुद्रशक्तिर्भवेदिह ॥
सार्वभौमः शतावृत्त्या भवत्येव न संशयः ॥७५॥

तन्त्रान्तरेऽपि–

आवर्तनत्रये लक्ष्मी पञ्चावृत्तौ जगद्-वशम् ।
दशावृत्तौ शिवादीनां देवानां शक्तिभाग् भवेत्॥७६॥
लक्षावृत्तौ सार्वभौमो दरिद्रोऽपि भवेन्नरः ।
नार्थवादोऽथर्वणस्य वसिष्ठवचनं यथा ।७७॥

पुरश्चरणे त्ववश्यं होमः । वाञ्छाकल्पलतायाश्चेति नित्यं परम् ।

अथ मूलवाक्यानुसारीप्रयोगः

प्रथमकूटमुच्चार्य आत्मतत्त्वाय स्वाहा । द्वितीयकूटमुच्चार्य विद्यातत्त्वाय स्वाहा । तृतीयकूटमुच्चार्य शिवतत्त्वाय स्वाहा । खान्यङ्गिः संस्पृश्य, प्राणायामं पूर्ववत् कृत्वा । इष्टदेवता-प्रीत्यर्थं तुरीयां सन्ध्यां करिष्ये । वामहस्ते जलं गृहीत्वा, अङ्गुलि-विवरगलद्-बिन्दुभिः पूर्ववच्छिरः प्रोक्ष्य, पूर्ववत् प्राश्य, पुनः

प्रोक्ष्याऽघमर्षणं कुर्यात्। ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि। क्लीं विद्यातत्त्वं शोधयामि। सौः शिवतत्त्वं शोधयामि। खाग्नि स्पृश्य। सौः शिवतत्त्वं शोधयामि। क्लीं विद्यातत्त्वं शोधयामि। ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि। ऐं क्लीं सौः सर्वतत्त्वं शोधयामि। खाग्नि स्पृशेत्। मूलाधारादि-ब्रह्मरन्ध्रान्तं तुर्यां विद्यां विभाव्य,

वह्न्यासाध्वनावहिस्तारकमण्डलात् ब्रह्मरूपम्।
भास्वत्-रत्नौघ-मुकुटां स्फुरच्चन्द्रकलाधराम्॥
सद्यः सन्तप्तहेमाभां सूर्यमण्डलरूपिणीम्।
पाशाङ्कुशाभयवरां स्मरन्नथ जपेन्नरः॥१॥

—इति तुरीयविद्यया प्राग्वत्प्रणवत्रितारोत्तरं तुरीयामुक्त्वा, तुर्येश्वरीपादुकां पूजयामि। यथा—ऐं ह्रीं श्रीं हसकल हसकहल सकलह्रीं तुर्येश्वरीपादुकां पूजयामि। मानसैरभ्यर्च्य। अञ्जलौ जलं गृहीत्वा, ह्रीं त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि। तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्।

चन्द्रमण्डलमध्यस्थायै इदमर्घ्यं समर्पयामि स्त्रिः। ह्रीं नमः स्वाहा। हंसः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय द्वादशकलात्मने स-ग्रह-राशि-नक्षत्र-तिथि-वार-योग-करण-परिवृत्तासन-सम्पद-स्थिताय श्रीचक्रसूर्यायाऽर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा। तन्मूर्ध्नि निवेदयेत्। त्रिर्मूलेन सन्तर्प्य। ऋष्यादि विधाय, यथाशक्ति गायत्रीं मूलं च जप्त्वा, गुरुं नत्वा, एवं तुरीयां सन्ध्यां विधाय।

ईश्वर उवाच

शृणु ब्रह्मन् ! यथान्यायं विद्यागणपतेर्मनुम् ।
सर्वैश्वर्यप्रदं दिव्यं सर्वलोक-विमोहनम् ॥ २ ॥
धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षाणां साधनं सर्वसिद्धिदम् ।
ऋषिर्विद्या गणेशस्य दक्षिणामूर्तिरुच्यते ॥ ३ ॥
छन्दश्च देवी गायत्री देवो विद्यागणेश्वरः ।
गं बीजं ह्रीं ततः शक्तिर्विनियोगः प्रयोजने ॥ ४ ॥
पञ्चबीजसमायुक्तं ह्रामित्यादि षडङ्गके ।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि विद्यागणपतेर्विभो ! ॥ ५ ॥

'करीन्द्रवदनमि'त्यादि 'सर्वार्थसिद्धये' इत्यन्तम् ।

एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं प्रातः षोडशवारकम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति विघ्नेशः संप्रसीदति ॥ ६ ॥
मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि विघ्नराजस्य धीमतः ।
प्रणवं पञ्चबीजाद्यं विद्या प्रथमखण्डकम् ॥ ७ ॥
गणपतिं चतुर्थ्यन्तं द्वितीयं खण्डमुच्यते ।
वद-द्वयान्तमुच्चार्य तृतीयं खण्डमप्यथा ॥ ८ ॥
पश्चात् सर्वजनं मेऽथ वशमानय संयुतम् ।
स्वाहेत्युक्ते गणेशस्य मन्त्रोऽयं सर्वसिद्धिदः ॥ ९ ॥

धन-धान्यप्रदः सद्यः सर्वलोकवशङ्करः ।
आयुष्करः प्रजावृद्धिः करो व्याधिविनाशकृत् ॥१०॥

अस्य श्रीविद्यागणपतिमहामन्त्रस्य, दक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः, विद्यागणपतिर्देवता, गं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, श्रीविद्यागणपतिप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

दक्षिणामूर्तिऋषिः शिरसि । गायत्रीछन्दसे नमः मुखे । श्रीविद्यागणपतिर्देवता हृदये । गं बीजं नाभौ । ह्रीं शक्तिः गुह्ये । विनियोगः, पादयोः । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं हां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं हूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं हैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं हः करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादि-न्यासः ।

करीन्द्रवदनं वन्दे त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ।
अधस्ताद् वनिताकारं सिन्दूरारुणविग्रहम् ॥११॥
उत्तुङ्ग-स्तन-भारोद्यद्-रत्नभूषण-भूषितम् ।
क्वणत्-किङ्किणिका-काञ्ची-मण्डनूपुरभूषितम् ॥१२॥
बीजा-पूर-गदां चापं शूलं चक्रं सरोरुहम् ।
पाशोत्पले च बीह्यग्रं स्वदन्तं रत्नकुम्भकम् ॥१३॥

बिभ्रत्सकङ्कणैर्हस्तैरुभाभ्यां हेमशृङ्खलम् ।
बिभ्रतं विद्यागणपं ध्यायेत् सर्वार्थसिद्धये ॥१४॥

इति ध्यात्वा मुद्राः प्रदर्श्य । मानसोपचारैः सम्पूज्य । योन्या प्रणम्य । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं कएईलह्रीं गणपतये हसकहलह्रीं वरवरद सकलह्रीं सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । षोडशवारं जप्त्वा, पुनर्ऋष्यादि पूजान्तं विधाय ।

गुह्याऽतिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु देवेश ! त्वत्प्रसादान्मयि स्थिरा ॥१५॥

इति हस्तेषु निवदयेत् । श्रीविद्यागणपतिः प्रीयन्ताम् । ततो हेमाद्रावितिध्याने कालविधानादन्त्ययामे वाञ्छां कुर्यात् ।

यथा--

श्रीगुरुभ्यो० ॥१॥ गणपतये० ॥२॥ क्षेत्रपालाय० ॥३॥ सरस्वत्यै० ॥४॥ मूलमुच्चार्य तालत्रयं कृत्वा । मूलेन प्राणायम्य त्रयं कृत्वा । अस्य श्रीवाञ्छाकल्पलतामन्त्रस्य, आनन्दभैरव - गणका-ऽङ्गिरस्-कश्यप-वसिष्ठ-विश्वामित्र-संवादा ऋषयः, देवी गायत्री, निचृद्गायत्र्यनुष्टुप्-छन्दांसि श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी-गणेश-संवादाग्न्यमृतरुद्रो देवताः श्रीं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, वाञ्छितार्थप्रसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

आनन्दभैरव - गणका - ऽङ्गिरस् - कश्यप - वसिष्ठ-विश्वामित्र-संवादऋषिभ्यो नमः, शिरसि। देवीगायत्री निचृद्गायत्री अनुष्टुप्-छन्दसेभ्यो नमः, मुखे। श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी-गणेश-संवादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यो नमः, हृदये। श्रीं बीजाय नमः, नाभौ। ह्रीं शक्तये नमः, गुह्ये। क्लीं कीलकाय नमः, आधारे। मूलेन व्यापकं चेत्। ऐं क्लीं सौः सुन्दरी ह्रीं सर्वज्ञायै ह्रां गां ब्रह्मात्मन्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ऐं क्लीं सौः सुन्दरी ह्रीं नित्यतृप्तायै ह्रीं गीं विष्णात्मन्यै तर्जनीभ्यां नमः। ऐं क्लीं सौः सुन्दरी ह्रीं अनादिबोधितायै हूं गूं रुद्रात्मन्यै मध्यमाभ्यां नमः। ऐं क्लीं सौः सुन्दरी ह्रीं स्वतन्त्रायै ह्रैं गैं ईश्वरात्मन्यै अनामिकायै नमः। ऐं क्लीं सौः सुन्दरी ह्रीं नित्यमलुप्तायै ह्रौं गौं सदाशिवात्मन्यै कनिष्ठिकायै नमः। ऐं क्लीं सौः सुन्दरी ह्रीं अनन्तायै ह्रः गः सर्वात्मन्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादि।

ध्यानम्—

हेमाद्रौ हेमपीठस्थित-विविधसुरैरीड्यमानां च राजत्
पुष्पेश्विक्षवासपाशाङ्कुश-कर-कमलां रक्तवेशातिरक्ताम्।
दिक्षूद्यद्भिश्चतुर्भिर्मणिमयकलशैः पञ्चशक्त्यैकविद्यां
स्वच्छां कृत्साभिषेकां भजत भगवतीं भूतिदामन्त्रयामे।

बीजा-पूर-गदेक्षु-कार्मुक-रुजारक्ता-ऽब्ज-पाशोत्पल-
व्रीह्यग्र-स्वविषाण-रत्नकलश-प्रोद्यत्-कराम्भोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया श्लिष्टोज्ज्वलद्भूषया
विश्वोत्पत्ति-विपत्ति-संस्थितिकरो विघ्नो विशिष्टार्थदः।

धवल नलिन-राजच्चन्द्रमध्ये निषण्णां
स्वकर-कलितपाशं साभयं साङ्कुशं च ।
अमृत-वपुषमिन्दु-क्षीरवर्णं त्रिनेत्रं
प्रणमत सुरवन्द्यमिक्षुसंवादमम्बिम् ॥१८॥

स्फुटित-नलिनसंस्थं मौलिबद्धेन्दुरेखा
गलदमृतरसार्द्रं चन्द्रवह्न्यर्कनेत्रम् ।
स्वकर-कलितमुद्रा वेदपाशाक्षमालां
स्फाटक-रजतमुद्रा गौरमीशं नमामि ॥१९॥

इति ध्यात्वा मुद्रां प्रदर्श्य, मानसैः सम्पूज्य, जपेत्, यथा—

---

१. मुद्रा ज्ञानमुद्रेत्यर्थः । वेदशब्देन पुस्तकमुद्रा इति । यथा—
तर्जन्यङ्गुष्ठको सक्ताग्रगतो हृदि विन्यसेत ।
वामहस्ताम्बुजं वामे जानुमूर्द्धनि विन्यसेत् ॥
ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रस्य प्रेयसी ॥
अपि च—
ज्ञानमुद्रा हृदि न्यस्तो तर्जन्यङ्गुष्ठको युतो ।
वामहस्ताम्बुजं वा तु यदि मूर्द्धनि विन्यसेत् ॥— मेरुतन्त्र, ८प्र०, श्लोक ६३।
वाममुष्टिं स्वाभिमुखीं कृत्वा पुस्तकमुद्रिका ॥—मन्त्रमहोदधिः ।

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं वलीं ग्लौं गं गुगुरी कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं यदद्यकच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे । गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ १ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गुगुरी कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ २ ॥

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गुगुरी कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् । गं क्षिप्रप्रसादनाय गं गणपतये वरवरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॥ ३ ॥

ॐ २८ ॥ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ गं ३५ ॥ ४ ॥ ॐ २८ ॥ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषां समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ गं ३५ ॥ ५ ॥ ॐ २८ । सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्यमा । इलस्पदे समिद्युध्यसे स नो वसून्या भर ॥ गं ३५ ॥ ६ ॥ ॐ २८ ॥

समानो मन्त्र० ॥ गं ३५ ॥ ७ ॥ ॐ २८ ॥ जातवेदसे० गं ३५ ॥ ८ ॥ ॐ २८ ॥ त्र्यम्बकं यजामहे० ॥ गं ३५ ॥९॥ ॐ २८ ॥ तत्सवितु० ॥ गं ३५ ॥१०॥ ॐ २८ ॥ यदद्यकच्च०॥ गं ३५ ॥११॥ ॐ २८ ॥ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ॥ ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ गं ३५ ॥१२॥ भूः ॥ भद्रन्नो अपि वातय मनः ॥ ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा ।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥२०॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरतां च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे ॥२१॥

इति प्रथमपर्यायः ॥१॥

०

अथ द्वितीयपर्यायः

ॐ २८ ॥ यदद्य कच्च० गं ३५ ॥१॥ ॐ २८ ॥ तत्सवितु० गं ३५ ॥२॥ ॐ २८ ॥ त्र्यम्बकं० ३५ । ३॥ ॐ २८ ॥ जातवेदसे० गं ३५ । ४॥ ॐ २८ ॥ समानो मन्त्र० गं ३५ ॥५॥ ॐ २८ ॥ सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना ऽउपासते गं ३५ ॥६॥ ॐ २८ ॥ समानो० गं ३५ ॥७॥ ॐ २८ ॥ जातवेदसे० गं ३५ ॥८॥

ॐ २८ ॥ त्र्यम्बकं यजा० गं ३५ ॥९॥ ॐ २८ ॥ तत्सवितु० गं ३५ ॥१०॥ ॐ २८ ॥ यदद्य० गं ३५ ॥११॥ ॐ २८ ॥ अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ॥ प्रत्यञ्चो यन्तु नियुतः पुनस्ते३ मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् गं ३५ ॥१२॥ भुवः मरुतामोजसे स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं वशमानय वश-मानय स्वाहा ।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥ १ ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरतां च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे ॥ २ ॥

इति द्वितीयपर्यायः ॥२॥

०

अथ तृतीयपर्यायः

ॐ २८ ॥ यदद्य कच्च० गं ३५ ॥१॥ ॐ २८ ॥ तत्स-वितु० गं ३५ ॥२॥ ॐ २८ ॥ त्र्यम्बकं० गं ३५ ॥३॥ ॐ २८॥ जातवेदसे० गं ३५ ॥४॥ ॐ २८॥ समानो० गं ३५॥५॥ ॐ २८ ॥ समानो मन्त्र० गं ३५ ॥६॥ ॐ २८॥ समानो० गं ३५ ॥७॥ ॐ २८ ॥ जातवेद० गं ३५ ॥८॥ ॐ २८ ॥ त्र्यम्बकं० गं ३५ ॥९॥ ॐ २८ ॥ तत्सवि० गं ३५ ॥१०॥ ॐ २८ ॥ यदद्य० गं ३५ ॥११॥ ॐ २८ ॥ यो मामग्ने

भागिनँ् सं तमथा भागं चिकीर्षति ॥ अभागमग्ने तं कुरु मामग्ने भागिनं कुरु स्वाहा गं ३५ ॥१२॥ स्वः इन्द्रो विश्वस्य राजति । ॐ ह्रीं वँ ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥ १ ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरतां च जायेत संवादाग्ने ! प्रसीद मे ॥ २ ॥

इति तृतीयपर्यायः ॥३॥

०

अथ चतुर्थपर्यायः

ॐ २८ ॥ यद्य कच्च० गं ३५ ॥१॥ ॐ २८ ॥ तत्सवितु० गं ३५ ॥२॥ ॐ २८ ॥ त्र्यम्बकं० गं ३५ ॥३॥ ॐ २८ ॥ जातवेदसे० गं ३५ ॥४॥ ॐ २८ ॥ समानो० गं ३५ ॥५॥ ॐ २८ ॥ समानी व ऽआकूतिः समानो हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति गं ३५ ॥६॥ ॐ २८ ॥ समानो० गं ३५ ॥७॥ ॐ २८ ॥ जातवेदसे० गं ३५ ॥८॥ ॐ २८ ॥ त्र्यम्बकं० गं ३५ ॥९॥ ॐ २८ ॥ तत्सवि० गं ३५ ॥१०॥ ॐ २८ ॥ यदद्य० गं ३५ ॥११॥ ॐ २८ ॥ अजैष्माद्यासनाम चाऽभूमानागसो वयम् । जाग्रत्स्वप्नः सङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऽऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु

गं ३५॥१२॥ भूर्भुवः स्वः। शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम्।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये॥ १॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम्।
निरतां च जायेत संवादाग्ने! प्रसीद मे॥ २॥

इति चतुर्थः जपित्वा,

गुह्याऽतिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु देवेशि! त्वत्प्रसादान्मयि स्थिरा॥ ३॥

इति निवेदयेत्।

इति वाञ्छाकल्पताप्रयोगो मूलवाक्यतः।

उद्धृत्य बुद्धिराजेन व्रजराजात्मजेन वै।
प्रयोगपारिजाताख्योऽथर्वणात् सुविमृश्य च॥ ४॥
कुमारसंहितां चैव विचार्य प्रोक्त एव हि।
निर्मत्सरैः सुधीवृन्दैर्ध्येयः स्वेष्टार्थसिद्धये॥ ५॥

इति व्याकरणाचार्य - साहित्यवारिधि - आचार्यपण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रि-सङ्कलितायां वाञ्छाकल्पलतायां श्रीबुद्धिराजविरचितो वाञ्छाकल्पलताप्रयोगः समाप्तः।

शुभं भूयात् [वि० सं० २०२६]

परिशिष्टम्

भूशुद्धिः

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

इति मन्त्रमुच्चार्य युगपद्वामपार्ष्णि-भूतलाघातत्रय-करास्फोटनत्रय-क्रूरदृष्टयवलोकनपूर्वक-तालत्रयेण भौमान्तरिक्ष-दिव्यान् भेदावभासकान् विघ्नानुत्सारयेत् । इति भूशुद्धिः ।

१ तत्त्वशुद्धिः

श्वाससमीरं पिङ्गलया अन्तराकृष्य,

'ॐ मूलशृङ्गाटकात् सुषुम्नापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा ।' इति मन्त्रेण मूलाधारस्थितं जीवात्मानं सुषुम्नावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, परमशिवेन एकीभूतं विभाव्य ईडया वायुं रेचयेत् ।

'ॐ यं १६. (इडया पूरयित्वा) संकोचशरीरं शोषय शोषय स्वाहा' इति निजशरीरं शोषितं विभाव्य पिङ्गलया रेचयेत् ।

'ॐ रं १६. (पिङ्गलया पूरयित्वा) सङ्कोचशरीरं दह दह पच पच स्वाहा' इति प्लुष्टं भस्मीकृतं च विभाव्य इडया रेचयेत् ।

'४ वं १६. (इडया पूरयित्वा) परमशिवामृतं वर्षय वर्षय स्वाहा' इति तद्भस्म सहस्रारेन्दु-मण्डल-विगलदमृतरसेन सिक्तं च विभाव्य पिङ्गलया रेचयेत् ।

'४ लं १६. (पिङ्गलया पूरयित्वा) शाम्भवशरीर-मुत्पादयोत्पादय स्वाहा' इति तद्भस्मनो दिव्यशरीरमुत्पन्नं विभाव्य इडया रेचयेत् ।

'४ हंसः सोऽहं (इडया पूरयित्वा) अवतर अवतर शिवपदात् जीव सुषुम्नापथेन प्रविश मूलशृङ्गाटकम् उल्लसोल्लस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हंसः सोऽहं स्वाहा' इति परमशिवेनैकीकृतं जीवं पुनः सुषुम्नावर्त्मना मूलाधारे स्थापितं चिन्तयेत् । इति भूतशुद्धिः ।

अथ तुरीयसन्ध्याविधिः

मूलेन आचम्य, मूलेन त्रिः प्राणानायम्य, 'मनोपात्त-समस्त-दुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं' (देशकालौ संकीर्त्य) 'श्री-राजराजेश्वरीप्रीत्यर्थं' (देवीमानरीत्या सङ्कल्प्य) 'श्रीविद्या-प्रातःसन्ध्यामुपासिष्ये' ।

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान् द्व्यष्ट-चतुष्क-षष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकं
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

गुरुपादुकामनुमुच्चार्य, सुमुखादिभिः पञ्चमुद्राभिः श्रीगुरुं प्रणम्य, मूलमन्त्रम् ऋष्यादिध्यानान्तं विधा, स्वपुरतः धेनु-मुद्रया जलममृतीकृत्य, मूलविद्यया अष्टवारमभिमन्त्र्य, तेन जलेन षोडशस्वरैः सविन्दुभिः ['अं नमः, आं नमः + + अः नमः' इति] मार्जयित्वा, दक्षिणहस्तेन जलमादाय, कादि-मान्तैः स्पर्शवर्णैः मूलविद्यया च ['कं नमः, खं नमः + + मं नमः, क–५ ह–६ स–४' इति] जलं पीत्वा, यादि-दशभिः मूलविद्यया च ['यं नमः, रं नमः + + क्षं नमः, क–५ ह–६ स–४' इति] शिरसि प्रोक्ष्य, सूर्यमण्डले देवीं यथोक्तरूपां ध्यायेत् ।

ध्यानम्—

सकुङ्कुम-विलेपनामलिक-चुम्बि-कस्तूरिकां
समन्द-हसितेक्षणां सशर-चाप-पाशाङ्कुशाम् ।
अशेष जन-मोहिनीमरुण-माल्य-भूषाम्बरां
जपा-कुसुम-भासुरां जपविधौ स्मरेदम्बिकाम् ॥
चतुर्भुजे चन्द्रकलावतंसे कुचोन्नते कुङ्कुमरागशोणे ।
पुण्ड्रेक्षु-पाशाङ्कुश-पुष्पबाण-हस्ते नमस्ते जगदेकमातः ॥

दक्षिणहस्ते जलमादाय, 'लं वं रं यं हं' इति त्रिरभिमन्त्र्य, 'क–५ ह–६ स–४' इति च त्रिरभिमन्त्र्य, तज्जलबिन्दुभिः वामाङ्गुष्ठानाभिकाभ्यां 'क–५ ह–६ स–४' इति स्वशिरसि

त्रिः प्रोक्ष्य, अवशिष्टजलं वामहस्ते निधाय, तेजोरूपं तज्जलम् इडयाऽऽकृष्य, स्वदेहान्तस्थितं सकलकलुषं प्रक्षालितं भावयित्वा, तज्जलं कृष्णवर्णं विभाव्य, पिङ्गलया बहिर्निर्गतं मत्वा, तज्जलं पुनः दक्षिणहस्ते कृत्वा, स्ववामभागे ज्वलद्वज्रशिलां ध्यात्वा, '४ श्लीं पशुं हुं फट्' इति तस्यां शिलायामास्फाल्य, हस्तौ प्रक्षाल्य, मूलविद्यया जलमादाय, 'क–१५' इति ब्रह्मरन्ध्रात् सहस्रदल-कमलगत-परमामृतेनैक्यीभूतं विभाव्य, राजदन्तविवरान् नेत्रमार्गेण निर्गमय्य, तज्जलं वामकरे निधाय, तेन जलेन 'अमृतमालिनी स्वाहा' इति मन्त्रेण सर्वाङ्गुलीभिः स्वशिरसि त्रिः प्रोक्ष्य, '४ क–५ आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ४ ह–६ विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ४ स–४ शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ४ स–४ शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ४ ह–६ विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा, क–५ आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। ४ क–१५ सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा' इति त्रिधा। एवं नवधा जलं पिबेत्।

सहस्रारकमले मूलविद्यातुरीयकूटं त्रयोदशाक्षररूपं पद्मराग-समप्रभं ध्यात्वा, ब्रह्मरन्ध्रासापुटेन तारकमण्डलाद् बहिः परमाकाशे समावाह्य, तदुद्भूता भगवतीं तेजोरूपां ध्यायन् 'हसकल हसकहल सकलह्रीम्' इति तुरीयकूटमुच्चार्य 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-श्रीपादुकां पूजयामि नमः' इति त्रिः सम्पूज्य, पुनः 'क-५ वाग्-भवेश्वरि विद्महे, ह–६ कामेश्वरि च धीमहि। स–४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' इति तुरीयगायत्रीमुच्चार्य 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-

श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा' इति त्रिरर्घ्यं दत्वा, पुनस्तुरीयकूटमुच्चार्य 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-श्रीपादुकां तर्पयामि' इति त्रिः सन्तर्प्य, श्रीगुरुपादुकामुच्चार्य, ततः तुरीयगायत्रीं ततो मूलविद्यां, ततस्तूरीयकूटं च यथाशक्ति जपेत् ।

अथ उपस्थानम्

त्रिपुरा सर्वरूपाणि चराणि स्थावराणि च ।
सायं प्रातस्तु मध्याह्ने सर्वदा सा परा स्थिता ।।
उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि ।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि ! यथासुखम् ।।

गुं गुरुभ्यो नमः । दुं दुर्गायै नमः । गं गणपतये नमः । क्षं क्षेत्रपालकाय नमः । सरस्वत्यै नमः । परमात्मने नमः ।

श्रीशिवाचार्यवर्याद्यां शङ्कराचार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गु परम्पराम् ।।
दिव्यश्रीपादुकां ध्यात्वा परितुष्याम्यहं सदा ।
श्रीगुरुं परमं वन्दे पश्चात्तं परमं गुरुम् ।।
परमेष्ठिगुरुं वन्दे परापरगुरुं भजे ।
आनन्दाख्यगुरुं वन्दे तच्छिष्यस्तत्कृपावशः ।।
श्रीनाथादींश्च सम्पूज्य सम्प्रदायक्रमादहम् ।

योगगोत्रं समुच्चार्य [परमेष्ठिगुरु-परमगुरु-स्वगुरुनामानि आनन्दनाथशब्दवर्जमुच्चार्य] आनन्द-स्वच्छन्दचिद्रूपानन्दगोत्रः अमुका-ऽऽनन्दनाथ अमुकशर्माहं भो अभिवादये ।

इति तुरीयसन्ध्याविधिः ।

*

अथ नामपारायणविधिः

तत्रादौ साधको विविक्तदेशे नद्यादितीरे एकान्ते स्वगृहे स्वासनमास्तीर्य '४ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इत्यासनं सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखः स्वस्तिकाद्यासनेनोपविश्य, गुरु-गणपतिं स्वेष्टदेवताः प्रणम्य मूलेन प्राणायामत्रयपूर्वकं संक्षेपतो भूतशुद्धिं प्राणप्रतिष्ठां मातृकान्यासं च कृत्वा, मस्तकदक्षबाहु-मूलादिषट्त्रिंशत्स्थानेषु प्रतिस्थानं षोडशदलपद्मं विभाव्य, तेष्वकारादि-क्षकारान्तान् षट्त्रिंशत्तत्त्वर्णान् प्रत्येकं षोडशस्वर-संयुक्तान् विभाव्य मध्ये तत्प्रथमाक्षरं विन्यस्य पूर्वादिदलेषु तत्तदक्षरविकृतषोडशवर्णास्तदादिकान् विन्यसेदित्येवं पूर्णमण्डल-वर्णान् विन्यस्य पुनस्तद्दिन-नित्यविद्यासहित-मूलविद्यया प्राणा-यामत्रयं कृत्वा,

शिरसि—'४ दक्षिणमूर्तिऋषये नमः ।

मुखे—४ पंक्तिच्छन्दसे नमः ।

हृदये—४ कालनित्यारूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः' इति ऋष्यादिकं विन्यस्य, 'मम मोक्षार्थे नामपारायणजपे विनियोगः' इति कृत्वाऽञ्जलिरुक्त्वा तद्दिनित्यविद्याक्षरैः त्रिभिर्द्विरावृत्त्या यथाविधि करषडङ्गन्यासं चतुरासनन्यासं वाग्देवताष्टकन्यासं च विधाय ।

रक्तां रक्ताम्बरां रक्तसर्विभूषानुलेपनाम् ।
पाशाङ्कुशेक्षु-कोदण्ड-प्रसून-विशिखां स्मेरत् ॥

इति कालनित्यां हृदये ध्यात्वा, हृदये श्रीचक्रं कालचक्रमध्यगतं विभाव्य, तत्र देवीं सावरणां कालनित्याभिश्च परिवृतां ध्यात्वा, मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, पारायणजपमारभेत ।

तत्रादौ अङ्गविद्याजपः—

४ क—१५ दि + हंस अ ह्सौः हंसः
,, ,, आ ,, ,,
❀ ❀ ❀
,, ,, क्ष ,, ,,

इति एकपञ्चाशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपित्वा, ततः केवलमूलविद्यां त्रिर्जपित्वा ।

'ए वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु हसौः सहाः' इति दीपिनीविद्यामेकवारं जपित्वा ततो गुरुपादुकामेकवारं जपित्वा, पुनः चत्वारिंशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपेत् । तद्यथा—

४ मूलं	अ	क्षा	हसाई	हंसः
,,	ई	ला	,,	,,
,,	ऊ	हा	,,	,,
,,	ॠ	सा	,,	,,

इत्यष्टधा जपित्वा,

पुनः—

४ मूलं	आ	क्षाई	हंसः	
,,	अ	क्षाई	,,	
,,	ई	लाई	,,	
,,	इ	लाई	,,	
,,	ऊ	हाई	,,	
,,	उ	हाई	,,	
,,	ॠ	साई	,,	
,,	ऋ	साई	,,	
,,	ऌ	षाई	,,	
,,	ॡ	षाई	,,	
,,	ऐ	शाई	,,	
,,	ए	शाई	,,	
,,	औ	वाई	,,	
,,	ओ	वाई	,,	
,,	अः	लाई	,,	
,,	अं	लाई	,,	

इति षोडशधा जपित्वा

४ मूलं	ऌ	षा	हसाई	हंसः
,,	ऐ	शा	,,	,,
,,	औ	वा	,,	,,
,,	अः	ला	,,	,,

४ मूलं	अ	काई	हंसः	
,,	इ	चाई	,,	
,,	उ	टाई	,,	
,,	ॠ	ताई	,,	
,,	ऌ	पाई	,,	
,,	ए	याई	,,	
,,	ओ	शाई	,,	
,,	अं	लाई	,,	

इत्यष्टधा जपित्वा

४ मूलं	आ	क्षाई	हंसः	
,,	ई	लाई	,,	
,,	ऊ	हाई	,,	
,,	ॠ	साई	,,	
,,	ऌ	षाई	,,	
,,	ऐ	शाई	,,	
,,	औ	वाई	,,	
,,	अः	लाई	,,	

इत्यष्टधा जपित्वा

ततः षोडशावान्तयुगभिन्ने महायुगे यदेव युगं भविष्यति तदक्षरमारभ्य सर्वाभिर्दिननित्यविद्याभिः सह मूलं जपेत्। अयमङ्गविद्याजपो वर्गद्वयस्याप्यादौ प्रत्यहं कार्यः।

अथ प्रथमदिने। ४ मूलं अ आई हंसः। ४ मूलं अ काई हंसः···४ मूलं अ क्षाई हंसः ॥३६॥ पुनः ४ मूलं आ आई हंसः। ४ मूलं आ काई हंसः···४ मूलं आ क्षाई हंसः ॥ ३६॥ एवं इ आ, इ का, इ खा···इ क्षा ।३६॥ ई आ, ई का···ई क्षा ॥३६॥ एवम् उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः—एतेषां च अः आई हंसः। अः काई हंसा···अः क्षाई हंसः। इत्यन्तं जपेत्। एवं षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याको जपो भवति मूलविद्यायाः। अत्र पारायणे प्रथमं तद्दिनयुगाक्षरात् षोडशस्वरभिन्नादुत्पन्नषट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतविद्याभिः सह मूलं जपित्वा, पश्चाशत्तद्दिनाक्षरजनितविद्याभिः तावत्सङ्ख्याभिः सह प्रोक्तक्रमेण मूलं जपेत्। युगाक्षरदिनाऽक्षरे तु तद्दिननित्यविद्यायाः प्रथमाक्षरं द्वितीयाक्षरं च बोध्यम्। युगाक्षरोत्थविद्याजपे विशेषस्तु—यस्मिन् युगे यत्स्वरयुतं युगाक्षरं भवति तत्स्वरमारभ्य प्रतिस्वरं षट्त्रिंशत्क्रमेण तद्विसर्गान्तिमविद्यापर्यन्तं जपित्वा, पुनस्तदक्षरस्य प्रथमस्वरमारभ्य आरब्धस्वरस्य पूर्वस्वरान्तिमविद्यावधि जपेत्। तदा मूलस्य ५७६ जपो भवति। अत्र युगस्तु षट्त्रिंशद्दिनात्मको भवति। प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णेषु ५७६ संख्याकेषु एकैकाक्षरस्य एकैकयुगं प्रति युगाक्षरत्वं च भवति। एतत्सर्वं दिननित्यविद्याक्रमं च गुरुमुखादेव जानीयात्। एवं द्विपञ्चाशदुत्तरका-

दशशतसंख्याको जपो भवति मूलस्य। अङ्गविद्यायास्तु एकैक-वर्गादौ एकनवतिसंख्याकः। तेन वर्गद्वयादौ जपो द्व्यशीत्युत्तर-शतसंख्याको भवति। केवलं मूलजपोऽपि वारचतुष्टयं त्रिस्रा-वृत्त्या द्वादशधा भवति। एवं संभूय १३४६ संभवन्ति मूलस्य। एवमुक्तसंख्याकजपमुक्तविधिना कृत्वा मूलं त्रिर्जपित्वा '४ मूलं ङरलक्स्ह्रैं ह्सक्लरङीं ह्सकलरङौः' इत्युत्तीर्णविद्यां सकृ-ज्जपित्वा 'मम सकलमनोरथान् साधय साधय तुभ्यं नमः' इति प्रार्थनीविद्यां कृताञ्जलिः सकृज्जपेत्। इति वर्गद्वयस्याप्यन्ते बोध्यम्। इत्थं पारायणजपं कृत्वा स्तोत्रमिदं पठेत्। तद्यथा--

क्ष्माम्बग्नी-रणखार्केन्दु-यष्ट्रप्राय-युगाक्षरैः।
मातृभैरवगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्।
कादिवर्गाष्टकाकार-समस्ताष्टक-विग्रहाम्।
अष्टशक्त्यावृतां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥
स्वरषोडशकानां तु षट्त्रिंशद्भिः पराऽपरैः।
षट्त्रिंशत्तत्त्वगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥
षट्शिंत्तत्त्वसंस्थाप्य शिवचन्द्रकलास्वपि।
कादि-तत्त्वान्तरां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥
आईमाया-द्वयोपाधि-विचित्रेन्दुकलावतीम्।
सर्वात्मिकां परां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥

षडध्व-पिण्डयोनिस्थ-मण्डलत्रय-कुण्डलीम् ।
लिङ्गत्रयात्मिकां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥
स्वयम्भूहृदयां बाणभ्रूकामाङ्गस्थितेतराम् ।
प्राप्तप्रत्यक्चितिं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥
अक्षान्तरगताशेष-नामरूपक्रियां पराम् ।
शक्तिं विश्वेश्वरीं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥
वर्गान्ते पठितं यत् स्यात् स्तोत्रमेतत्समाहितैः ।
सर्गान् कामानवाप्नोति अन्ते सायुज्यमाप्नुयात् ॥

इति स्तुत्वा जपं देव्यै समर्पयेत् ।

एवं द्वितीयदिने प्राग्वत् अङ्गविद्याजपान्तं विधाय ४ मूलं 'क आई हंसः । क काई हंसः । क खाई हंसः·····क क्षाई हंसः ।' पर्यन्तम् ३६ । 'का आई हंसः । का काई हंसः ।··· का क्षाई हंसः ॥ ३६ ॥ कि आई हंसः । कि काई हंसः । कि काई हंसः ॥ ३६ ॥ एवं की कु कू कृ कॄ वलृ क्लृ के कै को कौ कं कः ।'

एवं षट्त्रिंशद्दिनेषु च प्रागुक्तपरिपाट्या प्रत्यहं १३४६ संख्या यथा भवति तथा जपं कृत्वा वर्गद्वयस्यान्ते स्तोत्रं पठेत् ।

इति वाञ्छाकल्पलतायां नामपारायणविधिः ।

०

शान्ति-पञ्चकम्

(१)

शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

(२)

शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् । ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

(३)

सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

(४)

नमो वाचे या चोदिता या चानुदिता तस्यै वाचे नमो नमो वाचे नमो वाचस्पतये नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो

मन्त्रपतिभ्यो मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः पराद्मोऽहमृषीन्मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन्परीदां वैश्वदेवीं वाचमुद्यासं शिवामदस्ताञ्जुष्टां देवेभ्यः शर्म मे द्यौः शर्म पृथिवी शर्म विश्वमिदं जगत् । शर्म चन्द्रश्च, सूर्यश्च, शर्म ब्रह्म प्रजापती । भूतं वदिष्ये भुवनं वदिष्ये तेजो वदिष्ये यशो वदिष्ये तपो वदिष्ये ब्रह्म वदिष्ये सत्यं वदिष्ये तस्मा अहमिदमुपस्तरणमुपस्तृज उपस्तरणं मे प्रजायै पशूनां भूयादुपस्तरणमहं प्रजायै पशूनां भूयासं प्राणापानौ मृत्योर्मापातं प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मधु मनिष्ये मधु जनिष्ये मधु वक्ष्यामि मधु वदिष्यामि मधुमतीं देवेभ्यो वाचमुद्यासं शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यस्तं मा देवा अवन्तु शोभायै पितरोऽनुमदन्त । ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

(५)

तच्छंयोरावृणीमहे । गातुं यज्ञाय । गातुं यज्ञपतये । दैवी स्वस्तिरस्तु नः । स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम् । शं नो अस्तु द्विपदे । शं चतुष्पदे । ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

इति शान्ति-पञ्चकं समाप्तम् ।

०

श्रीसूक्तम्

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण-रजत-स्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥ १ ॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनाद-प्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम् ॥ ३ ॥
कां सोऽस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मनेमिं शरणमहं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥
उपैति मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥
कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१३॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१४॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यां प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयंपुरुषानहम् ॥१५॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६॥
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षी पद्मसम्भवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षीं येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥१७॥
अश्वदायी गोदायी धनदायी महाधने ।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥१८॥
पद्मानने पद्म-विपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रियेविश्वमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयिसंनिधत्स्व ॥१९॥
पुत्र-पौत्र-धनं धान्यं हस्त्यश्वादि-गवेरथम् ।
प्रजानां भवसी माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥२०॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमस्तु ते ॥२१॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥२२॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाऽशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ॥२३॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुक-गन्ध-माल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥२४॥

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥२५॥
महालक्ष्मी च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥२६॥
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ।२७॥

इति श्रीसूक्तं समाप्तम् ।

०

श्रीसिद्धिलक्ष्मीस्तोत्रम्

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीसिद्धिलक्ष्मीस्तोत्रमालामन्त्रस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीसिद्धिलक्ष्मीर्देवता, मम समस्त-दुःख - क्लेश-पीडा-दारिद्र्य-विनाशनार्थे सर्वलक्ष्मीप्रसन्नवरणार्थं महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती देवताप्रीत्यर्थं सिद्धिलक्ष्मीस्तोत्रपाठे जपे च विनियोगः ।

करन्यासः

ॐ सिद्धिलक्ष्मी अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं विष्णुहृदये तर्जनीभ्यां नमः । ॐ क्लीं अमृतानन्दे मध्यमाभ्यां नमः । ॐ श्रीं दैत्यमालिनी अनामिकाभ्यां नमः । ॐ तं तेजःप्रकाशिनी कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ब्राह्मी वैष्णवी माहेश्वरी करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः

ॐ सिद्धिलक्ष्मी हृदयाय नमः। ॐ हां वैष्णवी शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं अमृतानन्दे शिखायै वौषट्। ॐ श्रीं दैत्यमालिनी कवचाय हुम्। ॐ तं तेजः-प्रकाशिनी नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हीं क्लीं श्रीं ब्राह्मीं वैष्णवीं अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

ब्राह्मीं च वैष्णवीं भद्रां षड्भुजां च चतुर्मुखाम्।
त्रिनेत्रां च त्रिशूलां च पद्म-चक्र-गदाधराम्॥ १॥
पीताम्बरधरां देवीं नानालङ्कारभूषिताम्।
तेजःपुञ्जधरां श्रेष्ठां ध्यायेद् बालकुमारिकाम्॥ २॥
ॐकारलक्ष्मीरूपेण विष्णुहृदयमव्ययम्।
विष्णुमानन्दमध्यस्थं हींकारबीजरूपिणी॥ ३॥
ॐ क्लीं अमृतानन्दभद्रे सद्य आनन्ददायिनी।
ॐ श्रीं दैत्यमक्षरदां शक्तिमालिनी शत्रुमर्दिनी॥ ४॥
तेजःप्रकाशिनी देवी वरदा शुभकारिणी।
ब्राह्मी च वैष्णवी भद्रा कालिका रक्तशाम्भवी॥ ५॥
आकारब्रह्मरूपेण ॐकारं विष्णुमव्ययम्।
सिद्धिलक्ष्मि! परालक्ष्मि! लक्ष्यलक्ष्मि! नमोऽस्तु ते॥ ६॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।
तन्मध्ये निकरे सूक्ष्मं ब्रह्मरूपव्यवस्थितम्॥ ७॥
ॐकारपरमानन्दं क्रियते सुखसम्पदा।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके॥ ८॥

प्रथमे त्र्यम्बका गौरी द्वितीये वैष्णवी तथा ।
तृतीये कमला प्रोक्ता चतुर्थे सुरसुन्दरी ॥ ९ ॥
पञ्चमे विष्णुपत्नी च षष्ठं च वैष्णवी तथा ।
सप्तमे च वराराहा अष्टमे वरदायिनी ॥१०॥
नवमे षड्गत्रिशूला दशमे देवदेवता ।
एकादशे सिद्धिलक्ष्मीर्द्वादशे ललितात्मिका ॥११॥
एतत् स्तोत्रं पठन्तस्त्वां स्तुवन्ति भुवि मानवाः ।
सर्वोपद्रवमुक्तास्ते नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१२॥
एकमासं द्विमासं वा त्रिमासं च चतुर्थकम् ।
पञ्चमासं च षण्मासं त्रिकालं यः पठेन्नरः ॥१३॥
ब्राह्मणा क्लेशता दुःखो दरिद्रा भयपीडिता ।
जन्मान्तर - सहस्रेषु मुच्यते सर्वक्लेशतः ॥१४॥
अलक्ष्मीर्लभते लक्ष्मीमपुत्रो पुत्रवर्धनम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं वह्नि - चौर - भयेषु च ॥१५॥
शाकिनी - भूत - वेताला सर्वव्याधि - निपातके ।
राजद्वारे महाघोरे संग्रामे रिपुसङ्कटे ॥१६॥
सभास्थाने स्मशाने च कारागृहादिबन्धने ॥१७॥
ईश्वरेण कृतं स्तोत्रं प्राणिनां हितकारकम् ।
स्तुवन्ति ब्राह्मणा नित्यं दारिद्र्यं न च वर्धते ॥१८॥
या श्रीः पद्मवने कदम्बशिखरे राजगृहे कुञ्जरे
श्वेते चाऽश्वयुते वृषे च युगले यज्ञे च यूपस्थिते ।

शङ्खे देवकुले नरेन्द्रभवने गङ्गातटे गोकुले
या श्रीस्तिष्ठति सर्वदा मम गृहे भूयात् सदा निश्चला ॥१९॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ईश्वर-विष्णुसंवादे
दारिद्र्यनाशन-सिद्धिलक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

०

श्रीलक्ष्मीस्तवराजस्तोत्रम्

[1]श्रीमद्वेङ्कटनाथार्य - कवितार्किक - केसरी ।
वेदान्ताचार्य-वर्य्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि ॥ १ ॥

ईशानां जगतोऽस्य वेङ्कटपते-र्विष्णोः परां प्रेयसीं
लद्वक्षः-स्थल-नित्य-वासरसिकां तत्क्षान्ति-संवर्धनीम् ।
पद्मालङ्कृत-पाणि-पल्लवयुतां पद्मासनस्थां श्रियं
वात्सल्यादि-गुणोज्ज्वलां भगवतीं वन्दे जगन्मातरम् ॥२॥

[3]मानेप्रीति - ग्रथित - विभवां मङ्गलं मङ्गलानां
[4]वक्षःपीठे मधुविजयिनीं [5]भूषयन्तीं [6]स्वकान्त्या ।
प्रत्यक्षानु - श्रविकमहिम - प्रार्थिनीनां प्रजानां
श्रेयोमूर्तिं[7] श्रियमशरणस्त्वां शरण्यां प्रपद्ये ।३॥

आविर्भावः कलश-जलधावभ्यरे वाऽपि यस्याः
स्थानं यस्याः सरसिज - वनं विष्णुवक्षः - स्थलं वा ।
भूमौ यस्या भुवनमखिलं देवि ! दिव्यं पदं वा
स्तोक - प्रज्ञै-रनवधिगुणा स्तूयसे सा कथं त्वम् ? ॥४॥

---

१. 'श्रीमान् वेङ्कटनाथार्य्यः' इति पाठान्तरम् । २. क्वचित्पुस्तके इदं श्लोकद्वयं नास्ति । ३. 'मानातीत' इति पा० । ४. 'पीठी' इति । ५. 'ना' इति क्वचित्पुस्तके । ६. 'न्ती' इति । ७. 'मूर्तिं' इति पा० । ८. 'मूमा' इति ।

[1]स्तोतव्यं स्वं दिशति भवती देहिभिः स्तूयमाना
तामेव त्वामविरतगतिः [2]स्तोतु - मार्शंसमानः ।
सिद्धारम्भः सकलभुवन - श्लाघनीयो भवेयं
सेवापेक्षा तव चरणयोः श्रेयसे कस्य न स्यात् ॥५॥

यत्सङ्कल्पाद् भवति कमले ! यत्र देहिन्यमीषां
जन्म[3]स्थान - प्रलयरचना जङ्गमाऽजङ्गमानाम् ।
तत्कल्याणं किमपि यमिनामेकलक्ष्यं समाधौ
पूर्णं तेज[4]स्स्फुरति भवती पाद - लाक्षा - रसाङ्कम् ॥६॥

निष्प्रत्यूह - प्रणयघटितं देवि ! नित्यानपायं
विष्णुस्त्वं चेद[5]नवधिगुण[6] - र्द्वन्द्वमन्योन्य - लक्ष्यम् ।
शेषश्चित्तं विमल - मनसां मौलयश्च श्रुतीनां
सम्पद्यन्ते विहरण - विधौ यस्य शय्याविशेषाः ॥७॥

उद्देश्यस्त्वं[7]जजननि भजतो रुज्झितोपाधि-गन्धं
प्रत्यग्रूपे हविषि युवयो - रेकशेषित्वयोगात् ।
पद्मे पत्युस्तव च निगमै - र्नित्यमन्विष्यमाणो
नाऽवच्छेदं भजति महिमा नर्तयन् मानसं नः ॥८॥

पश्यन्तीषु श्रुतिषु परितः [8]देवतृन्देन [10]सार्द्धं
मध्येकृत्यं[11] त्रिगुण-फलकं [12]निर्मितं स्थानभेदम् ।

---

१. 'स्तोतव्यत्व' इति । २. 'त्वामनिरत' । ३. 'जन्मस्थेय' । ४. 'तेजः-स्फुरति' । ५. 'पाय' । ६. 'चेत्य' । ७. 'गुणं' । ८. 'स्वं जननि' । ९. 'सूचि' इति । १०. 'सार्धं' । ११. 'कृत्य' । १२. 'निर्मित' इति ।

विश्वाधीशं[1] प्रणयति सदा विभ्रमद्यूतधृत्तौ
ब्रह्मेशाद्या दधति [2]युवयो रक्ष सारप्रचारम् ।।९।।

अस्येशाना त्वमसि जगतः संश्रयन्ती मुकुन्दं
लक्ष्मीः पद्मा जलधि - तनया विष्णुपत्नीन्दिरेति ।
यन्नामानि[3] [4]श्रुति-परिमलान्येवमावर्त्तयन्तो
नावर्तन्ते दुरितपवन - प्रेरिते जन्मचक्रे ।।१०।।

त्वौ मे बाहुः कतिचिदपरे त्वत्प्रियं [6]लोकनाथं
किं तैरन्तःकलह-मलिनः किञ्चिदुत्तीर्य मग्नैः ।
भावारूढौ भगवति युवां[7] दैवतं [8]दम्पती नः ।।११।।

आपन्नार्त्ति - प्रशमनविधौ बद्धदक्षस्य[9] विष्णोः-
राचख्युस्त्वां प्रियसहचरीमेक - मत्योपपन्नाम् ।
प्रादुर्भावैरपि समतनुः प्राप्तमुन्नीयसे[10] त्वं
दूरोत्क्षिप्तैरिव मधुरता दुग्धराशेस्तरङ्गैः ।।१२।।

धत्ते शोभां हरिमरकते [11]तावकी मूर्तिराद्याः
तन्वी तुङ्गस्तन - भर - नता तप्तजाम्बूनदाभा ।
यस्यां [12]गच्छत्युदय - विलयैर्नित्यमानन्द - सिन्धा-
[13]वुत्पद्यन्ते ललित - लहरी - विभ्रमं व्यक्तयस्ते ।।१३।।

---

१. 'विश्वाधीश प्रणयिनि' इति । २. 'युवयोरक्षशारप्रचारम्' । ३. 'मैक' । ४. 'श्रुतिपरिपणान्येव' । ५. 'त्वामेवाहुः' । ६. 'नैं' । ७. 'युवां' । ८. 'दम्पती दैवते नः' । ९. 'दीक्षस्य' इति पा० । १० 'प्रादुर्भावमन्वीयसे' । ११. 'स्तावकी' इति । १२. 'गच्छन्त्युदय' । १३. 'विच्छ्रावेगोल्लसितलहरी' ।

आसंसारं विततमखिलं वाङ्मयं यद्विभूति-
र्यद्भ्रूभङ्गात् कुसुम - धनुषः किङ्करो मेरुधन्वा ।
यस्यां नित्यं नयनशतकैरेकलक्ष्यो[1] महेन्द्रः
पद्मे तासां परिणतिरसौ भावलेशैस्त्वदीयैः ॥१४॥

अग्रे भर्तुः सरसिजमये भद्रपीठे निषण्णा-
मम्भोराशेरधिगत - सुधा - सम्प्लवादुत्थितां त्वाम् ।
पुष्पासार - स्थगित - भुवनैः पुष्कलावर्त - कार्यै[2]-
र्दीप्तारम्भाः[3] कनक - कलशैरभ्यषिञ्चन् गजेन्द्राः ॥१५॥

आलोक्य त्वाममृत - सहजे विष्णुवक्षः - स्थलस्थां
शापाक्रान्ताः शरणमगमन् सावरोधाः सुरेन्द्राः ।
लब्ध्वा भूयस्त्रिभुवनमिदं रक्षितं[4] त्वत्कटाक्षैः
सर्वाकार-स्थिर-समुदयां सम्पदं निर्विशन्ति ॥१६॥

आर्त्तत्राण - व्रतिभिरमृता - सार - निम्नाम्बुवाहै-
रम्भोजानामुपरि[5] मिषतामन्तरङ्गैरपाङ्गैः[6] ।
यस्यां यस्यां दिशि विहरते देवि ! दृष्टिस्त्वदीया
तस्यां तस्यामहमहमिकां तन्वते सम्पदोघाः ॥१७॥

योगारम्भ - त्वरितमनसो युष्मदेकान्तयुक्तं
धर्म्मं प्राप्तं[7] प्रथममिह ये धारयन्ते धनार्यं[8]
तेषां भूमेर्धनपति - गृहादम्बरादम्बुधेर्वा
धारा निर्यान्त्यधिकमधिकं वाञ्छितानां वसूनाम् ॥१८॥

---

१. 'लक्षो' । २. 'कार्यैः' । ३, वलृप्तारम्भाः' । ४. 'लक्षितं' । ५. 'मुषसि' ६ 'मङ्गरङ्गैः' । ७. 'युष्मदेकान्त' । ८ 'प्राप्तु' । ९. 'धनायाम्' ।

श्रेयस्कामाः कमल - निलये चित्रमाम्नायवाचां
चूडापीठं[1] तव पदयुगं चेतसा धारयन्तः ।
छत्रच्छाया - सुभग-शिरस - श्चामर - स्मेर-पार्श्वाः
श्लाघाशब्द - श्रवण-मुदिताः सूरिणः[2] सञ्चरन्ति ॥१९॥
ऊरीकर्तुं कुशलमखिलं जेतुमादीनरातीन्
दूरीकर्तुं दूरितमखिलं[3] त्यक्तमाद्यामविद्याम् ।
ब्रह्मस्तम्बावधिक - जननं[4] ग्राम - सीमान्तरेखा-
मालम्बन्ते विमल-मनसो विष्णुकान्ते दयान्ते[5] ॥२०॥
जाताकांक्षा जननि ! युवयोरेकसेवाधिकारे
मायालीढं विभवमखिलं मन्यमानास्तृणाय ।
प्रीत्यै विष्णोस्तव च कृतिनः प्रीतिमन्तो भजन्ते
वेलाभंग - प्रशमनफलं वैदिकं[6] धर्मसेतुम् ॥२१॥
सेवे देवि ! त्रिदशमहिला - मौलिमालार्चितं[7] ते
सिद्धि-क्षेत्रं शमित-विपदां सम्पदां पादपद्मम् ।
यस्मिन्नीपन्नमित - शिरसो क्षापयित्वा[8] शरीरं
वर्तिष्यन्ते व्रितमसि पदे वासुदेवस्य धन्याः ॥२२॥
[10]सामप्राय-प्रकटितदयैः [11]शान्त-वात्सल्य-दिग्धै-
[12]रम्भःस्निग्धैरमृत - लहरी - लब्ध - सद्ब्रह्मचर्यैः ।
धर्मे तापत्रयविरचिते गाढ - तप्तं क्षणं मा-
माकिञ्चन्य - ग्लपित - मनघे - राद्रियेथाः कटाक्षैः ॥२३॥

---

१. 'पीडं' । २. 'स्रग्विणः' । ३. 'दुरितनिवहं' । ४. 'अम्ब' । ५. 'जनन' । ६. 'ते' । ७. 'क' इति । ८. 'मालोचितं' इति पा० । ९. 'यापयित्वा' १०. 'सान' 'सानुप्रास' । ११. 'सान्द्र' । १२. 'रम्ब' ।

[1]सम्पद्यन्ते भव - भय - [2]तमो मानवस्त्वत्प्रसादाद्
भावाः सर्वे भगवति हरौ भक्तिमुद्वेलयन्तः ।
याचे किं त्वामहमिह यतः [3]शीतलोदारशीला
भूयो भूयो दिशसि महतां मङ्गलानां प्रबन्धान् ॥२४॥
माता देवि ! त्वमसि कमले ! वासुदेवः पिता मे
जातः [4]सोऽयं जननि युवयोरेकलक्ष्यं दयायाः ।
दत्तो युष्मत्परिजनतया [5]देशिकैरप्यतस्त्वां
किं ते भूयः प्रियमिति किल स्मेर-वक्त्रा विभासि ॥२५॥
कल्याणानामविकल-निधिः काऽपि कारुण्य-सीमा
नित्यामोदा निगम-वचसां मौलि-मन्दार-माला ।
सम्पद्-दिव्या-मधुविजयिनः सन्निधत्तां सदा मे
सैषा देवी सकल - भुवन - प्रार्थना - कामधेनुः ॥२६॥
उपचित - गुरुभक्त - रुत्थितं वेङ्कटेशात्
कलि - कलुष - निवृत्त्यै कल्प्यमानं प्रजानाम् ।
सरसिज - निलयायाः स्तोत्रमेतत् पठन्तः
सकल - कुशल - सीमा सार्वभौमा भवन्ति ॥२७॥
कवि - तार्किक - सिंहाय कल्याणगुणशालिने ।
श्रीमते वेङ्कटेशाय वेदान्त - गुरवे नमः ॥२८॥

इति पण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिसंस्कृतायां वाञ्छाकल्पलतायां सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्य श्रीमद्वेङ्कटेशनाथस्य वेदान्ताचार्य्यस्य कृतिषु कनकधारा-श्रीलक्ष्मीस्तवराजः सम्पूर्णः ।

---

१. संरद्यते । २. 'तमीमानव' । ३. 'शीला' । ४. 'भगवान्' । ५. 'सोऽहं' । ६. 'दैशिकै' । ७. 'स्त्वं' इति पा० । ८. 'कल्पमाना' । ९. क्वचित्पुस्तके इदं श्लोकं नास्ति ।

धनदा-लक्ष्मी-स्तोत्रम्

धनद उवाच

देवी देवमुपागम्य नीलकण्ठं तनुप्रियम् ।
कृपया पार्वती प्राह शङ्करं करुणाकरम् ॥ १ ॥

देव्युवाच

ब्रूहि वल्लभ साधूनां दरिद्राणां कुटुम्बिनाम् ।
दरिद्र-दलनोपायमञ्जसैव धनप्रदम् ॥ २ ॥

पूजयन् पार्वतीवाक्यमिदमाह महेश्वरः ।

शिव उवाच

उचितं जगदम्बा त्वं तव भूतानुकम्पया ॥ ३ ॥
स-सीतं साऽनुजं रामं साऽञ्जनेयं सहाऽनुगम् ।
प्रणम्य परमानन्दं वक्ष्येऽहं स्तोत्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥
धनदं श्रद्दधानानां सद्यः सुलभकारकम् ।
योगक्षेमकरं सत्यं सत्यमेव वचो मम ॥ ५ ॥
पठन्तं पाठयन्तं वा ब्राह्मणैरास्तिकोत्तमैः ।
धनलाभो भवेदाशु नाशमेति दरिद्रता ॥ ६ ॥
भूभवांशभवां भूत्यै भक्तिकल्पलतां शुभाम् ।
प्रार्थयेत यथाकामान् कामधेनुस्वरूपिणीम् । ७ ॥
धनदे ! धनपे देवि ! दानशीले ! दयाकरे ! ।
त्वं प्रसीद महेशानि ! यदर्थं प्रार्थयाम्यहम् ॥ ८ ॥
धराऽमरप्रिये ! पुण्ये ! धन्ये धनदपूजिते ! ।
सुधनं धार्मिकं देहि यजमानाय सत्वरम् ॥ ९ ॥
रम्ये ! रुद्रप्रियेऽपर्णे ! रमारूपे ! रतिप्रिये ।
शिखा-सख्यमनो मूर्ते प्रसीद प्रणते मयि ।१०॥
आरक्त-चरणाम्भोजे सिद्धि-सर्वार्थदायिनि ! ।
दिव्याम्बरधरे ! दिव्ये ! दिव्यमाल्यानुशोभिते ! ॥११॥

समस्तगुणसम्पन्ने ! सर्वलक्षणलक्षिते ! ।
शरच्चन्द्रमुखे नीले नील-नीरज-लोचने ! ॥१२॥

चञ्चरीक-चमू-चारु-श्रीहार-कुटिलालके ! ।
दिव्ये दिव्यवरे ! श्रीदे ! कलकण्ठरवामृते ! ॥१३॥

हासो-ऽवलोकनैर्दिव्यैर्भक्त-चिन्तापहारके ! ।
रूप - लावण्य-तारुण्य - कारुण्य - गुणभाजने ! ॥१४॥

क्वणत् - कङ्कण-मञ्जीरे ! रसलीलाऽऽकराम्बुजे ! ।
रुद्रव्यक्तमहत्तत्त्वे ! धर्माधारे ! धरालये ! ॥१५॥

प्रयच्छ यजमानाय धनं धर्मैकसाधनम् ।
मातस्त्वं वाऽविलम्बेन ददस्व जगदम्बिके ! ॥१६॥

कृपाऽब्धे करुणागारे ! प्रार्थये चाऽऽशु सिद्धये ।
वसुधे ! वसुधारूपे ! वसु-वासव-वन्दिते ! ॥१७॥

प्रार्थिने च धनं देहि वरदे ! वरदा भव ।
ब्रह्मणा ब्राह्मणैः पूज्या त्वया च शङ्करो यथा ॥१८॥

श्रीकरे ! शङ्करे ! श्रीदे ! प्रसीद मयि किङ्करे ! ।
स्तोत्रं दारिद्र्य-कष्टार्त-शमनं सुधनप्रदम् ॥१९॥

पार्वतीश-प्रसादेन सुरेश-किंकरे स्थितम् ।
मह्यं प्रयच्छ मातस्त्वं त्वामहं शरणं गतः ॥२०॥

पाठफलम्

श्रद्धया ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति भक्तितः ।
सहस्रमयुतं लक्षं धनलाभो भवेद् [1]ध्रुवम् ॥२१॥

इति श्रीसद्यःप्राप्तिकारकं धनदाप्रोक्तं धनदा-लक्ष्मी-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

१. शिव लये कदलीवने वा, पश्चिमाभिमुखमाश्रित्य लिङ्गाश्रितवृक्षसमीपे वा, देवव्यालये विल्वमूले वा, हविष्याशी सन् ब्रह्मचर्यादिनियमं विधाय प्रत्यहं शतावर्तनानि कुर्यात् । यथोक्तसंख्याचतुष्टये कृते धनदा-लक्ष्मीर्वश्या भवति । उक्तसंख्याकं धन प्रयच्छति, अब्दमध्ये सिद्धिर्भवति ।